अरबों के देश में

लेखक की अन्य रचनाएँ

'कुछ सच कुछ झूठ' (सचित्र, पुरस्कृत)

पुस्तक में कितना सच है और कितना झूठ यह तो पढ़कर ही जाना जा सकता है लेकिन इसने हास्य-साहित्य में एक नई शैली को जन्म दिया है। सभी संस्मरण अत्यन्त रोचक और व्यंग्य विनोद से परिपूर्ण हैं। विख्यात कार्टूनिस्ट विद्यार्थी के व्यंग्य चित्रों से पुस्तक में चार चाँद लग गए हैं। मूल्य ४.००

'मैंने कहा' (सचित्र, पुरस्कृत)

शिष्ट सामाजिक चुभते हुए साहित्यिक और राजनैतिक व्यंग्य-विनोद से परिपूर्ण मौलिक निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों का अनुवाद कई प्रादेशिक भाषाओं में भी हुआ है। विख्यात् कार्टूनकार श्री अहमद के सुन्दर व्यंग्य-चित्र निबंधों के समान हास्य की सृष्टि करते हैं। दूसरा संस्करण। मूल्य ३.००

'चले आ रहे हैं' (सचित्र पुरस्कृत)

इसमें व्यास जी की 'तामा' 'चमचार' 'मृता' 'हुक्का' आदि सभी नवीनतम लोकप्रिय कविताएँ संग्रहीत हैं। प्रत्येक कविता के साथ प्रख्यात व्यंग्य-चित्रकार रवीन्द्र के अनमोल कार्टून भी दिए गए हैं। मूल्य ४.००

'अजी सुनो' (सचित्र)

हिन्दी कविता में शिष्ट हास्य की परम्परा के जन्मदाता व्यास जी ही हैं। 'अजी सुनो' उनकी प्रसिद्ध हास्य-कविताओं का संग्रह है। ये रचनाएँ करांची से कलकत्ते और काश्मीर से कन्याकुमारी तक जनता के दिलों में घर किए हुए हैं। चौथा संस्करण। मूल्य ३.००

'हमारे राष्ट्रपिता'

यों गांधी जी पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं लेकिन उनके जीवन और दर्शन को एक ही जगह संक्षेप में आकर्षक कवि-वाणी से व्यक्त करनेवाली यह प्रथम प्रामाणिक पुस्तक है। आचार्य विनोबाभावे ने इसकी भूमिका और टंडन जी ने इसके दो शब्द लिखे हैं। मूल्य २.००

'कदम-कदम बढ़ाए जा'

इसमें ओजपूर्ण भाषा में स्वतन्त्रता-संग्राम का पराक्रमपूर्ण ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी में यह वीर रसपूर्ण खण्ड-काव्य अपनी परम्परा में एकदम मौलिक और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत है। मूल्य १.२०

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६



लेखक

अरबों के देश में

गोपालप्रसाद व्यास



आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली

ARBON KE DESH MEN

by

Gopal Prasad Vyas

Rs 3.50

प्रकाशक

रामलाल पुरी संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट दिल्ली ६

मूल्य	साढ़े तीन रुपए
प्रथम संस्करण	१ ९ ६ ०
मुद्रक	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली

और क्या लिखूँ ?

यह पुस्तक यात्रा-विवरण नहीं है। इसमें अरब देशों की प्रगति के सरकारी आंकड़े या विज्ञप्तियाँ भी शामिल नहीं हैं। यह किसी के कहने से या किसी के प्रचार के लिए भी नहीं लिखी गई। इस पुस्तक की रचना तो बड़ी फुर्सत और मौज के साथ हुई है।

इसे लिखकर मैंने फिर से पढ़ा। बड़ा आनन्द आया। मुझे लगा कि अरब देशों की बातों के साथ-साथ इसमें मेरा व्यक्तित्व भी खूब उभरा है। इस पुस्तक में मैं स्वयं भी अपने ज्ञान-अज्ञान और खूबी-खराबियों के साथ और शोर के साथ हाजिर हूं। कुछ हद तक यह ठीक भी है। जब तक लेखक विषय के साथ अपने को मिला नहीं देता तब तक बात बात ही रहती है साहित्य नहीं बनती। मैंने इस पुस्तक को भूगोल इतिहास या राजनीति की दृष्टि से नहीं साहित्य की ही दृष्टि से लिखा है।

लिखते समय मैंने एक बात का और ध्यान रखा है कि मेरी पुस्तक मेरे देश वाले खासकर हिन्दी के पाठक पढ़ेंगे। मुझे ऐसा लगा है कि हिन्दी के पाठकों ने अभी गंभीर पुस्तकें पढ़ना शुरू नहीं किया है। कम-से-कम मुझ से तो उन्हें किसी गंभीर कृति की आशा कदापि नहीं है। मैंने भी अपने पाठकों की इस आशा को तोड़ा नहीं है। पूरे भारतीय दृष्टिकोण के साथ हँसती-खेलती यह कृति अपने पाठकों को सौंप रहा हूँ। शायद उन्हें पसन्द भी आए।

मार्च १९५८ में मैं दो सप्ताह के लिए अरब गणराज्य के निमंत्रण पर विदेश गया था। अपने सीमित ज्ञान को लेकर दो सप्ताह का समय होता भी क्या है? फिर अरबों की दुनिया तो बहुत बड़ी है। मैंने तो केवल मिस्र सीरिया और कुवैत की ही कुछ झलक देखी थी। इसलिए व्यापक जिज्ञासा रखने वालों के लिए यह पुस्तक बहुत अधूरी सिद्ध होगी। लेकिन जो विज्ञ हैं सारग्राही हैं वे खिचड़ी के एक चावल की तरह इसे परख कर तत्व तक पहुँच जाएँगे ऐसी मैं आशा करता हूँ।

इससे अधिक और क्या लिखूं ?

'हिन्दुस्तान'
नई दिल्ली
२७ मार्च १९६०

गोपालप्रसाद व्यास

क्रम

१

वह तो भगवान् ने खैर की

जी हाँ, दाता ने खैर ही की, नहीं तो जान के जाने में और कितने मिनट बाकी बचे थे! घर से हजारों मील दूर, न धरती न आकाश, बीच में ही ऐसे मरे होते कि वहाँ अपना रोने वाला एक न होता।

मृत्यु के साक्षात् दर्शन का अजीब अनुभव था। कान पकड़कर जैसे बकरों को बलि के स्थान पर ले जाया जाता है और वे अवश्य मिमियाते हुए खिंचे चले आते हैं, ऐसे ही हम लोग बरबस मौत के मुँह में खिंचे चले जा रहे थे, और बलि के बकरों की तरह कभी-कभी कुछ मिमिया उठते थे। फाँसी के तख्ते पर जाने से पूर्व जैसे कुछ बंदी संज्ञा हत हो जाते हैं, उसी प्रकार हममें से कुछ मौत से पहले मर भी गए थे, यानी अचेत हो गए थे। कलेजा तो मुँह को नहीं आ रहा था, उसके साथ-साथ पेट में जो कुछ था वह बाहर निकल पड़ने को उतावला हो उठा था। लगता था कि प्राणों से भी पहले हृदय पिंड मुँह की राह बाहर आ पड़ेगा।

हमारा हवाई जहाज गेंद की तरह पछाड़ खा रहा था। कानों के छेद रुई से अच्छी तरह बन्द किए हुए थे, फिर भी उनके परदे फटे जा रहे थे। बाहर-भीतर सभी जगह साँय-साँय मच रही थी। चक्कर-और चक्कर! चक्कर-पर चक्कर! लगता था बाहर भीतर सब-कुछ गोल है, और घूम रहा है। बात यह थी कि हम रेगिस्तान के चक्राकार तूफ़ान में फँस गए थे और कराची से दोपहर को चलकर जब हमारा हवाई जहाज सूरज छिपे कुएत पहुँचा, तो तूफ़ान इतना भयंकर था कि हवाई जहाज को उतरने के लिए स्थान ही दिखाई नहीं दे रहा

था। रेगिस्तान का तूफ़ान अंधा और प्रलयंकारी था। पीछे हटें तो अथाह समुद्र और आगे बढ़ें तो अपार रेगिस्तान। हटें-बढ़ें भी तो कैसे? किसके बूते? जहाज में पैट्रोल भी तो सिर्फ़ कुछ देर तक का ही था। फिर ज़िन्दगी और मौत के इन झूलों में अर्थात् नीचे उतरने फिर ऊपर चढ़ने, चक्कर काटने और फिर हवाई पट्टी खोजने के प्रयासों में उसकी आखिरी बूँदें भी घस-घसकर समाप्त होती जा रही थीं।

वायुयान के संचालक-कक्ष में से निकलकर एक सज्जन हम लोगों के पास आये, समझाने लगे कि ऊपर यह खतरे की पोशाक रखी हुई है। हवाई छतरी—जिसे कहते हैं वह यह है और यों खुलती है। उन्होंने बताया कि यह आपत्कालीन खिड़की है। संकट काल में इसे खोल देते हैं और एक-एक करके आदमियों को नीचे कुदा देते हैं। लेकिन घबराइए नहीं। अभी ऐसी कोई बात नहीं। खतरा होगा तो पहले उसे हम भोगेंगे। अच्छा 'ओ के'!

तभी तो कहता हूँ कि यह तो भगवान् ने खैर की, नहीं तो मेरा भी वही हाल होता जो एक दिन दिल्ली के लोकप्रिय नेता लाला देशबन्धु गुप्त का हुआ था। और आप इस ग्रन्थ को पढ़ने के बजाय चार तीन अखबारों में वैसा ही कुछ समाचार देखते जैसा आपने पिछले दिनों बांडुंग सम्मेलन के समय चीनी शिष्टमंडल के संबंध में पढ़ा था।

यह दुर्घटना टल जायगी ऐसी उस क्षण किसी को आशा न थी। सारा कुवैत नगर खड़ा होकर हमारे हवाई जहाज को अवश्य फड़फड़ाते देख रहा था, कि अब गिरा तब गिरा। सबके दिल भय और कुशंकाओं से भरे हुए थे कि न जाने यन्त्र-पंछी कहाँ अपने पर फैला दे! न जाने इसका कौन-सा कोना किस इमारत से कहाँ टकरा जाय और इसके अन्दर बैठे हुए ही नहीं, इसके साए में आने वाले भी मुल्के-अदम को रवाना हो जायें।

भारतीय पत्रकारों के शिष्टमंडल के साथ जब मैं दिल्ली से अरब गणराज्य की यात्रा पर रवाना हुआ था, तब सपने में भी यह नहीं सोचा था कि मौत को इतनी निकट से देखने का अवसर आयगा और बरबस

बारह घंटे के अन्दर ही वह हमारे स्वागत को यों आ पहुँचेगी। पालम हवाई अड्डे पर मैं दूल्हे की तरह हार-सिंगार से लदा-बदा विमान-पालकी पर बड़े शौक से सवार हुआ था। मेरी पत्नी ने आज ही तो मुझे बर माला पहनाई थी। क्योंकि शादी के समय बरमाला पहनाने की रस्म या तो हम लोगों में होती नहीं या होती होगी तो वह उस समय इतनी अबोध थीं कि जीवन के सबसे पवित्र और उल्लासपूर्ण पर्व पर मैंने उन्हें विवाह-वेदी पर अपनी बगल में सुबकते हुए ही सुना था। कैसी बरमाला? कोई उन्हें गोदी में उठाकर विवाह-मंडप में लाया था और वही सात फेरे फिराकर वापस भी ले गया था। आज फिर उनके अन्तस् में सुबकियाँ उभर रही थीं। मैंने देखा कि उनकी नयन-सीपियों में मुक्ता-कण झूम आए हैं। मैंने परिहास में अपने साथियों की ओर इंगित करते हुए उनसे कहा 'मैं अकेला ही तो जा रहा हूँ। ये सब लोग तो नहीं रहेंगे।'

लेकिन जब हवाई जहाज ऊपर-नीचे हिचकोले खा रहा था, दाएँ बाएँ चक्कर काट रहा था और उसकी सुइयाँ क्षण प्रति-क्षण नीचे ऊपर भाग-दौड़ रही थीं तब सहसा मेरे मन में यह प्रश्न उगा कि क्या सचमुच ही अब मैं मुँह से चुप चुप दिल से प्यार करने वाली अपनी प्राणाधिका पत्नी के पास नहीं पहुँच पाऊँगा?

मुझे स्मरण आया कि जब मेरे बच्चे मेरी विदेश-यात्रा पर बड़े खुश और गौरवान्वित थे, और अपने मित्रों और पड़ोसियों में मेरे प्रवास की बधाई बाँटते फिरते थे, तब मेरी पत्नी मेरी विदेश-यात्रा को लेकर कुछ अजीब तरह से खिन्न और गंभीर हो गई थीं। वह एकदम गुम हो गई थीं, जैसे उन्होंने मौन-व्रत साध लिया हो। लोग मिलने और विदा देने आते बच्चे हँसते-कूदते, सामान की सूची बनती, तैयारी होती, लेकिन वह इन सबसे अलग-थलग, उदास और खोई हुई-सी थीं। जैसे जो कुछ हो रहा था वह उन्हें सूझ नहीं रहा था। उस क्षण मृत्यु के मुँह में जाते-जाते मुझे यह सब स्मरण हो आया। मैंने सोचा क्या उन्हें इस भावी दुर्घटना का कुछ पूर्वाभास हो गया था? एक

चोट-सी लगी कि छोटे-छोटे अबोध बच्चे कोई किसी लायक नहीं घर में पैसा नहीं बैंक में पूँजी नहीं। जीवन का खतरे का कहीं कोई बीमा नहीं। चलते समय कुल १२५ रुपया उनके हाथ पर रख आया हूँ। हे भगवान ! कैसे क्या होगा ? अब तक दिल मजबूत था वह भी कमजोर होने लगा। मेरी बेचैनी बढ़ गई।

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। लेकिन तभी मेरे मानस पटल पर एक पवित्र मूर्ति अंकित हुई। पंचकक्ष की धोती ऊपर रेशम का उपरना गले में तुलसी की माला कंधे पर हाथ का कता हल्दी से रँगा पवित्र यज्ञोपवीत ललाट पर देदीप्यमान तिलक मुख पर कृष्णाश्रम स्तोत्र। यह मेरे पिताजी थे। ऐसे पिताजी जो नल का पानी नहीं पीते। किसी के हाथ का भोजन नहीं करते। घर-गृहस्थी से कोई सरोकार नहीं रखते। कोई मरे तो ग़म नहीं पैदा हो तो खुशी नहीं। वह भले और उनकी ठाकुर-सेवा भली। अहर्निश उनका गायत्री गीता भगवद्-भजन और कीर्तन में ही व्यतीत होता है। एक-एक करके उनके कई जवान भाई मरे, बेटे-बेटियाँ पोते-पोतियाँ काल के कराल गाल में फँसते चले गए परिवार पर घोर-से-घोर दुख और और शोक के बादल घिरे और बरसे लेकिन वह अपनी जड़ों पर मज बूत बने रहे। कोई भी बड़ी-से-बड़ी आँधी उन्हें न उखाड़ सकी। शायद वह अपने इस इकलौते पुत्र की मौत को भी निर्विकार होकर सह जाते और उनके कार्यक्रम में कोई बाधा न पड़ती। मैं मन-ही-मन उनकी स्थित प्रज्ञता का रहस्य खोज ही रहा था कि मुझे लगा कि पिताजी अपने तानपूरे पर अपना प्रिय भजन गा रहे हैं

करी गोपाल की सब होइ !
जो रचि राखी नंद-नन्द नै—
मेटि सकै ना कोइ !

और मेरी भ्रमित मति स्थिर हो गई। सोचा बावले किस चक्कर में पड़ा है ? जो तेरे बस में नहीं है उस पर सोच करने से क्या लाभ ? भगवान् सब भली ही करेंगे !

फलतोगत्वा भगवान् ने भली ही की। हवाई जहाज के फ़ौजी कप्तान ने साहस करके 'रिस्क' ले ही ली। जैसे चील अपने लक्ष्य पर टूटकर गिरती है वैसे ही झपाटे के साथ हमारा वायुयान भूमि पर आया—ठक! धरती का स्पर्श पाते ही हम सबकी चेतना लौट आई। जमा हुआ खून फिर से नसों में दौड़ने लगा। हमने एक दूसरे की ओर कुछ नए हर्ष और नए विश्वास के साथ देखा। सबके मन में एक ही भाव था 'बच गए भाई! बहुत बचे!!'

जब यह खबर कुएत के शेख मुबारिक शाह को मिली तो उन्होंने अपनी गाड़ियाँ हवाई अड्डे को दौड़ा दीं। आदेश दिया कि हिन्दी दोस्तों को पहले सीधे उनके महल में लाया जाय। लेकिन हमारे सकुशल उतरने की खुशी हवाई अड्डे के अधिकारियों और उसके आस पास काम करने वाले अनेक हिन्दुस्तानियों को भी शेख साहब से कम न थी। सब ऐसे गले मिल रहे थे और यों आनंद-विभोर थे कि कुछ मिनटों में हम भूल गए कि हम लोग किसी बिराने मुल्क में या ग़ैर बिरादरी के बीच में हैं। शेख साहब के अतिथि-गृह में बैठते वक्त तक तो हम उस पिछले दुःस्वप्न को याद तक भूल चुके थे। वह याद तो हमें शेख साहब ने अपने स्वागत-भाषण में हमारे बचने पर खुदा का शुक्रिया अदा करके ही दिलाई। हम तो वहाँ के शाही सत्कार ठाट-बाट, वहाँ के बदद्दू नौकरों और अरबी रीति-रिवाज की चकाचौंध में खुदा को भूल ही चुके थे। खतरा टल जाने के बाद खुदा को याद करता भी कौन है?

कुएत में हमें शानदार भोज दिया गया। भोजनों की विविधता के साथ-साथ अनेक प्रकार की मदिराएँ भी थीं और मदिर-नयनाएँ भी। भूखे तो लोग थे ही पिल पड़े। हमारे शाही भोजन के लिए बीसियों तरह के मांस तैयार किये गए थे। जब मेरे साथी हिन्दू मित्र बढ़ चढ़कर उन पर हाथ साफ़ कर रहे थे तब मैं एक कोने में चावलों पर थोड़ा दही डालकर सोच रहा था

पानी में मीन पियासी।
मोहि सुनि-सुनि आवे हाँसी॥

२

जहाँ की भूमि सोना उगलती है

भारत से तीन हजार तीन सौ किलोमीटर दूर पश्चिम में एक ऐसा नगर है जहाँ एक रुपये में 'पेट्रोल' मिलती है चार आने में पान मिलता है दो आने में पाँच गैलन पानी प्राप्त होता है और सौ रुपये महीने से कम किसी भी कमरे का किराया नहीं होता। लेकिन यह आँकड़े अभाव से उत्पन्न मँहगाई के सूचक नहीं। यह तो वहाँ की उच्च आर्थिक स्थिति का ही द्योतक है।

यह नगर क्या एक छोटी-सी रियासत ही है। छोटी सिर्फ इसे क्षेत्रफल की दृष्टि से ही कहा जा सकता है, जनसंख्या की दृष्टि से भी कह लीजिए, नहीं तो पौने दो लाख की आबादी के इस राज्य का वार्षिक बजट नब्बे करोड़ रुपये के लगभग है। यहाँ के शासकों का कहना है कि अगर राज्य की आय के समस्त स्रोत एकाएक बन्द भी हो जायें तो भी वे दस वर्ष तक लगातार इसी स्तर पर राज्य-व्यवस्था चला सकते हैं।

इस व्यवस्था को चलाना कोई आसान बात नहीं। इस देश में न अन्न पैदा होता है और न पानी। अन्न विदेशों से आता है और पानी साफ करके समुद्र से। न कपड़े बनते हैं न फर्नीचर। और-तो और चाय के लिए दूध भी पैदा नहीं होता। वह पश्चिमी देशों से पाउडर के रूप में मँगवाया जाता है। गायें तो यहाँ सिर्फ शासक के आँगन में ही बँधी हैं। न यहाँ पेड़ होते हैं न पशु-पक्षी। मतलब यह कि जीवन की हर आवश्यक चीज सुई से लेकर सिलाई की मशीन तक पुर्जे से लेकर बर्तन क्राकरी तक, ओढ़ने-बिछाने व कपड़ों से लेकर साज

शृंगार के सामान तक, यानी सब-कुछ, बाहर से मंगाना पड़ता है।

यही क्यों जीवन-स्तर के कुछ और आँकड़े भी कम चौंकाने वाले नहीं हैं। मोटर-ड्राइवर यहाँ पाँच सौ रुपये महीने से कम पर नहीं मिलता। वह खाली रुपयों से ही सन्तुष्ट नहीं होता, मोटर-मालिक को उसे रोटी, कपड़ा और मकान भी देना पड़ता है। मोटर-ड्राइवर की बात तो कुछ बड़ी हुई, लेकिन साधारण बोझा उठाने वाला कुली भी यहाँ दस रुपये रोज से कम पर नहीं मिल सकता। ग़रीब या फ़कीर यहाँ उसे कहते हैं जो सिर्फ दो सौ रुपया मासिक ही कमा पाता है।

यह देश अमरीका नहीं। यद्यपि मोटरों की विशाल संख्या को देखते हुए, इसके अमरीका होने का भ्रम जरूर हो सकता है। आप जानते हैं यहाँ कितनी मोटर गाड़ियाँ हैं ? बीस हजार ! गाड़ियाँ भी कैसी ? जिसमें दस-दस आदमी एक साथ बैठ सकें। नये-से-नये मॉडल नई-से-नई और अधिकांश में रेडियो फिट।

यह इग्लैंड या फ्रांस के किसी लार्ड या रईस की भी जागीर नहीं है। यद्यपि यहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों ही समझी-बूझी जाती हैं और कुछ घरों में तो जीवन के रहन-सहन का स्तर उस ऊँची यूरोपीय पद्धति से चलता है, कि इसे कहने वाले यूरोपीय उपनिवेश भी कह सकते हैं।

यहाँ के बाजारों में मुहल्ले से हिन्दी समझी और बोली जाती है। भारत के रुपये रेजगारी से ही यहाँ का लेन-देन चलता है। हवाई अड्डे पर भारतीय जहाज घाट पर भारतीय ड्राइवर भारतीय टेली फोन महकमों में भारतीय दूकानदार भारतीय, नौकर भारतीय और यहाँ के रहने वालों की आम शक्लें भी भारतीय लेकिन फिर भी यह भारतीय प्रदेश नहीं है। हालाँकि यहाँ की दूकानों पर मुरादाबाद के बर्तन आगरा कानपुर के जूते, बरेली का फर्नीचर, मैसूर-कश्मीर और हैदराबाद की कारीगरी के नमूने तथा भारतीय कपड़े से अटी हुई दूकानों को देखकर कोई भी अजनबी इसे भारत का ही एक समृद्धि शाली नगर मानने की भूल कर सकता है। यहाँ के सब धोबी मार

२

जहाँ की भूमि सोना उगलती है

भारत से तीन हज़ार तीन सौ किलोमीटर दूर पश्चिम में एक ऐसा नगर है जहाँ एक रुपये में ‘शेव’ बनती है, चार आने में पान मिलता है, दो आने में पाँच गैलन पानी प्राप्त होता है और सौ रुपये महीने से कम किसी भी कमरे का किराया नहीं होता। लेकिन यह आँकड़े अभाव से उत्पन्न मँहगाई के सूचक नहीं। यह तो वहाँ की उच्च आर्थिक स्थिति के ही द्योतक हैं।

यह नगर क्या एक छोटी-सी रियासत ही है। छोटी सिर्फ इसे क्षेत्रफल की दृष्टि से ही कहा जा सकता है, जनसंख्या की दृष्टि से भी कह लीजिए, नहीं तो पौने दो लाख की आबादी के इस राज्य का वार्षिक बजट नब्बे करोड़ रुपये के लगभग है। यहाँ के शासकों का कहना है कि अगर राज्य की आय के समस्त स्रोत एकाएक बन्द भी हो जायें तो भी वे दस वर्ष तक लगातार इसी स्तर पर राज्य-व्यवस्था चला सकते हैं।

इस व्यवस्था को चलाना कोई आसान बात नहीं। इस देश में न अन्न पैदा होता है और न पानी। अन्न विदेशों से आता है और पानी साफ करके समुद्र से। न कपड़े बनते हैं न फर्नीचर। और-तो और चाय के लिए दूध भी पैदा नहीं होता। वह पश्चिमी देशों से पाउडर के रूप में मँगवाया जाता है। गायें तो यहाँ सिर्फ शासक के आँगन में ही बँधी हैं। न यहाँ पेड़ होते हैं न पशु-पंछी। मतलब यह कि जीवन की हर आवश्यक चीज़ सुई से लेकर सिलाई की मशीन तक, छुरी से लेकर बर्तन क्राकरी तक, ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों से लेकर साज

शृंगार के सामान तक यानी सब-कुछ, बाहर से मँगाना पड़ता है।

यही क्यों जीवन-स्तर के कुछ और आँकड़े भी कम चौंकाने वाले नहीं हैं। मोटर-ड्राइवर यहाँ पाँच सौ रुपये महीने से कम पर नहीं मिलता। वह खाली रुपयों से ही सन्तुष्ट नहीं होता मोटर-मालिक को उसे रोटी कपड़ा और मकान भी देना पड़ता है। मोटर-ड्राइवर की बात तो कुछ बड़ी हुई, लेकिन साधारण बोझा उठाने वाला कुली भी यहाँ दस रुपये रोज से कम पर नहीं मिल सकता। ग़रीब या फ़क़ीर यहाँ उसे कहते हैं जो सिर्फ दो सौ रुपया मासिक ही कमा पाता है।

यह देश अमरीका नहीं। यद्यपि मोटरों की विशाल संख्या को देखते हुए, इसके अमरीका होने का भ्रम जरूर हो सकता है। आप जानते हैं यहाँ कितनी मोटर गाड़ियाँ हैं? बीस हजार! गाड़ियाँ भी कैसी? जिसमें दस-दस आदमी एक साथ बैठ सकें। नये-से-नये मॉडल, नई-से-नई, और अधिकांश में रेडियो फिट।

यह इंग्लैंड या फ्रांस के किसी लार्ड या रईस की भी जागीर नहीं है। यद्यपि यहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों ही समझी-बूझी जाती हैं और कुछ घरों में तो जीवन के रहन-सहन का स्तर उस ऊँची यूरोपीय पद्धति से चलता है कि इसे कहने वाले यूरोपीय उपनिवेश भी कह सकते हैं।

यहाँ के बाजारों में धड़ल्ले से हिन्दी समझी और बोली जाती है। भारत के रुपये रेजगारी से ही यहाँ का लेन-देन चलता है। हवाई अड्डे पर भारतीय जहाज घाट पर भारतीय ड्राइवर भारतीय, टेलीफोन महकमों में भारतीय दूकानदार भारतीय, नौकर भारतीय और यहाँ के रहने वालों को आम शक्लें भी भारतीय लेकिन फिर भी यह भारतीय प्रदेश नहीं है। हालांकि यहाँ की दूकानों पर मुरादाबाद के बर्तन, आगरा कानपुर के जूते बरेली का फर्नीचर, मैसूर-बंगलौर और हैदराबाद की कारीगरी के नमूने तथा भारतीय कपड़े से पटी हुई दूकानों को देखकर कोई भी अजनबी इसे भारत का ही एक समृद्धि-शाली नगर मानने की भूल कर सकता है। यहाँ के सब धोबी भार-

तीय हैं। यहाँ के सब सिनमाओं में भारतीय चित्र खूब चलते हैं। भार तीय आकाश वाणी के कार्यक्रम यहाँ खूब सुने जाते हैं।

लेकिन न यह अमरीका है, और न यूरोप। भारत भी नहीं है। यह तो हँसती-खेलती धन और जन से भरपूर उन्नति के शिखर की ओर अबाध गति से बढ़ती हुई अरबों की एक छोटी-सी दुनिया है। नाम है इसका कुएत। एशिया के नक्शे में सऊदी अरब के पूर्वी किनारे पर यह एक शेख-शासित रियासत है। यहाँ की भूमि भले ही अन्न-जल न उपजाती हो लेकिन वह सोना उगलती है। सोना यानी संसार की सबसे उपयोगी दुर्लभ और कीमती वस्तु पैट्रोल। प्रति वर्ष अरबों रुपये इसकी रायल्टी के रूप में राज्य को प्राप्त होते हैं। यह धन राशि पैट्रोल की तरह ही उफनकर कुएत में चमत्कार पैदा कर रही है। इसके जोर से यहाँ ऊँची-ऊँची इमारतें खड़ी हो रही हैं। जगह जगह चौराहे पार्क और उद्यान लगाए जा रहे हैं और सड़कें निकल रही हैं। अरब भूमि के रेगिस्तान के ऊपर कंक्रीट सीमेंट और लोहे की मजबूत पर्तें पड़ रही हैं। दुनिया की हलचल में नया कुएत अपनी महत्त्वपूर्ण जगह बना रहा है।

अभी तो कुएत में न रेल है न ट्राम। न नहरें हैं न तालाब। न कुएँ हैं न बगीचे। लेकिन अब घर-घर बिजली और टेलीफोन पहुँच रहे हैं। समुद्री घाट और हवाई अड्डे का विस्तार किया जा रहा है और उस गहन मरु प्रदेश में आज की वैज्ञानिक सुविधाओं से जो भी लाभ उठाया जा सकता है, उठाने की पूरी-पूरी कोशिश की जा रही है।

अरबों की अपनी कुछ पुरानी विशेषताएँ भी हैं। जैसे स्वभाषा स्वदेश और स्वधर्म में गहरी आस्था। यहाँ के सब लोग (ऊँची अंग्रेजी पढ़े-लिखे भी) गर्व से अरबी बोलते हैं सबको अपने कुएती होने पर अभिमान है और सब-के-सब रोजा-नमाज में चौकस हैं। दीने इस्लाम दुखियों की परवरिश करने को यतीमों को सहायता पहुँचाने को महत्त्व देता है। कुएत की शासन-व्यवस्था में भी यही बात है। अगर कुएत का कोई गरीब व्यक्ति कहीं कोई झोंपड़ी डालना चाहे तो उसे राज्य से

मुफ्त में जमीन मिल जाती है। अगर कुएतो यहाँ के शासक से यह कहे कि वह बेरोजगार है तो उसे तत्काल रोजगार और व्यापार करना चाहे तो उसके लिए यथासंभव रुपये की व्यवस्था कर दी जाती है। प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर तक यहाँ शिक्षा मुफ्त दी जाती है। बच्चों के रहने-सहने पहनने-ओढ़ने खाने-पीने और किताबों की व्यवस्था भी मुफ्त होती है। माध्यमिक स्तर पास करके यदि कोई विदेश में जाकर आगे पढ़ना चाहे तो उसे स्कॉलरशिप भी मिल जाती है। स्कूलों के भवन ऐसे हैं जैसे महल। यहाँ के अध्यापकों का वेतन इतना है जितना भारत के आई० सी० एस० का। सात सौ रुपये से लेकर दो हजार रुपये मासिक तक यहाँ अध्यापकों का वेतन दिया जाता है।

कुएत की दंड-व्यवस्था कठोर है। चोरों को यहाँ बड़ी सख्त सजा दी जाती है। अगर कोई विदेशी चोरी करता हुआ पकड़ा जाय तो उसे तत्काल कुएत से बाहर निकाल दिया जाता है। बेईमानी यहाँ बर्दाश्त नहीं की जाती। यही कारण है कि लोग नोटों के बडल-के-बंडल साइकिल के करियर के पीछे बाँधकर बैंक में ले जाते हैं। बैंकों में भी उन्हें सँभालने-सहेजने को कोई खास महत्त्व नहीं दिया जाता। यूँ ही बेदर्दी के साथ उन्हें फेंक दिया जाता है। खुद यहाँ के शासक का रहन सहन आदर्श है। वह एक छोटे-से मकान में रहते हैं। वह एक-पत्नीव्रती हैं। उनके पास केवल एक ही मोटर है। कुएत में मद्य-पान बन्द है। सिर्फ विदेशी लोगों को शराब पीने की इजाजत है। औरत परदे में रहती हैं। सह-शिक्षा नहीं है। यहाँ के लोगों का रहन-सहन ही नहीं, चरित्र भी ऊँचा है।

भारत और कुएत के सम्बन्ध बड़े सौहार्दपूर्ण हैं। भारतीयों को यहाँ बिराना नहीं समझा जाता। भारतीय रुपये की यहाँ बड़ी साख है। जैसा हमने ऊपर बताया कि यहाँ की करेंसी ही एक प्रकार से भारतीय रुपया है। यहाँ के बाजारों में भारतीय रुपया ही नहीं नये पैसे भी चलने लगे हैं। लगभग बीस हजार भारतीय कुएत में रहते बताए

जाते हैं। ये सब बड़े सुखी नजर आते हैं। लेकिन इनके जीवन में स्थायित्व नजर नहीं आता। कारण बच्चों की पढ़ाई का कोई प्रबन्ध यहाँ नहीं है। इन्हें अरबी भाषा के साथ-साथ यहाँ की धार्मिक शिक्षा भी ग्रहण करनी पड़ती है। वह जमीन लेकर वहाँ अपना मकान भी नहीं बना सकते। कुएत का अधिकांश व्यापार यद्यपि भारतीय ही चलाते हैं लेकिन वे सीधा व्यापार नहीं कर सकते। किसी कुएती को उन्हें साथ लगाना पड़ता है। परन्तु हर देश के अपने क़ानून क़ायदे होते हैं। भारतीय उनका आदर करना जानते हैं। यही कारण है कि वे शासन के प्रिय हैं, यही कारण है कि वे सुखी हैं और चार पैसे भी कमाते हैं। दुःख तो सिर्फ़ यह है कि उनमें से अधिकांश के बीवी बच्चे भारत में हैं।

कुएत के लोग अपने देश के अलावा संसार में दो ही महापुरुषों को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उनमें पहले हैं नासिर और दूसरे हैं नेहरू। घरों और बाजारों में जगह-जगह नासिर और नेहरू के चित्र लगे हुए मैंने देखे और यह अनुभव किया है कि भले ही कुएत में ब्रिटिश रेजीडेण्ट रहता है लेकिन उसकी आत्मा में स्वतन्त्रता का वैसा ही जोश समाया हुआ है जैसा मिस्र और भारत में।

१

भारतीय रुपया खरा और करारा

तीस वर्ष पूर्व जब मैं रोजी की तलाश में घर से पहले-पहल निकला तो चार दिन बाद मुझे आठ रुपये महीने की नौकरी मिली जो सिर्फ पन्द्रह दिन ही चल सकी यानी मुझे सिर्फ चार ही रुपये प्राप्त हुए।

इसके दस वर्ष बाद यानी आज से बीस साल पहले मेरा वेतन चालीस रुपये मासिक था।

इसके बीस साल बाद यानी इस लेख को लिखते समय मेरा वेतन चार सौ रुपये मासिक है अर्थात् मैं अब पहले से सौ गुना अधिक कमा रहा हूँ लेकिन चार रुपया कमाते समय जो निश्चिन्तता और बेफिक्री थी वह आज नजर नहीं आती।

तब रुपये के सोलह सेर गेहूँ बिकते थे सवा सेर का घी था छः पैसे सेर दूध आता था एक पैसे का नमक, एक पैसे की मिर्च एक पैसे की खटाई, धेले की हल्दी और धेले का धनियाँ हम दोनों स्त्री-पुरुषों के लिए एक सप्ताह के लिए काफी होता था। आज हाल यह है कि घर के सब लोगों को अगर एक ही दिन जूते पहनने पड़ जायें तो आधी तनख्वाह स्वाहा हो ले।

यह हाल सिर्फ चार सौ पाने वाले का नहीं, चार हजार पाने वालों का भी है। यह सब अन्न की महँगाई और कागज के नोट चलन के कारण है। बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों का भी यही कहना है कि मुद्रा-स्फीति और भारी मात्रा में विदेश से अन्न का आयात ही देश की अर्थ-व्यवस्था को असंतुलित करके, जनता को महँगाई के दम में घुटा रहा है। विरोधी दलों के नेता धड़ाधड़ नोट छापने की न

जाते हैं। ये सब बड़े सुखी नजर आते हैं। लेकिन इनके जीवन में स्थायित्व नजर नहीं आता। कारण बच्चों की पढ़ाई का कोई अलग प्रबन्ध यहाँ नहीं है। इन्हें अरबी भाषा के साथ-साथ यहाँ की धार्मिक शिक्षा भी ग्रहण करनी पड़ती है। वह जमीन लेकर वहाँ अपना मकान भी नहीं बना सकते। कुएत का अधिकांश व्यापार यद्यपि भारतीय ही चलाते हैं लेकिन वे सीधा व्यापार नहीं कर सकते। किसी कुएती को उन्हें साथ लगाना पड़ता है। परन्तु हर देश के अपने क़ानून क़ायदे होते हैं। भारतीय उनका आदर करना जानते हैं। यही कारण है कि वे शासन के प्रिय हैं, यही कारण है कि वे सुखी हैं और चार पैसे भी कमाते हैं। दुःख तो सिर्फ़ यह है कि इनमें से अधिकांश के बीवी बच्चे भारत में हैं।

कुएत के लोग अपने देश के अलावा संसार में दो ही महापुरुषों को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उनमें पहले हैं नासिर और दूसरे हैं नेहरू। घरों और बाजारों में जगह-जगह नासिर और नेहरू के चित्र लगे हुए मैंने देखे और यह अनुभव किया है कि भले ही कुएत में ब्रिटिश रेजीडेन्ट रहता है, लेकिन उसकी आत्मा में स्वतन्त्रता का वैसा ही जोश समाया हुआ है जैसा मिस्र और भारत में।

५

भारतीय रुपया खरा और करारा

तीस वर्ष पूर्व जब मैं रोजी की तलाश में घर से पहले-पहल निकला, तो चार दिन बाद मुझे आठ रुपये महीने की नौकरी मिली, जो सिर्फ़ पन्द्रह दिन ही चल सकी, यानी मुझे सिर्फ़ चार ही रुपये प्राप्त हुए।

इसके दस वर्ष बाद यानी आज से बीस साल पहले, मेरा वेतन चालीस रुपये मासिक था।

इसके बीस साल बाद, यानी इस लेख को लिखते समय, मेरा वेतन चार सौ रुपये मासिक है, अर्थात् मैं अब पहले से सौ गुना अधिक कमा रहा हूँ, लेकिन चार रुपया कमाते समय जो निश्चिन्तता और बेफिक्री थी, वह आज नजर नहीं आती।

तब रुपये के सोलह सेर गेहूँ बिकते थे, सवा सेर का घी था, छः पैसे सेर दूध आता था एक पैसे का नमक, एक पैसे की मिर्च एक पैसे की खटाई, धेले की हल्दी और धेले का धनियाँ हम दोनों स्त्री-पुरुषों के लिए एक सप्ताह के लिए काफी होता था। आज हाल यह है कि घर के सब लोगों को अगर एक ही दिन जूते पहनने पड़ [illegible] तनख्वाह स्वाहा हो ले।

यह हाल मुझ चार सौ पाने वाले का नहीं, चार [illegible] का भी है। यह सब अन्न की महँगाई और [illegible] कारण है। बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों का भी यही [illegible] है [illegible] स्फीति और भारी मात्रा में विदेश से अन्न का [illegible] अर्थ-व्यवस्था को असंतुलित करके [illegible] रहा है। विरोधी दलों के नेता [illegible]

बढ़े हुए भावों को ऊँचा रखने के कारण, सरकार को रात दिन कोसते रहते हैं।

जब मेरा वेतन भी पहले सप्ताह में ही चुक जाता है तो मैं भी और कुछ न पाकर अपनी सरकार को कोसने वालों में शामिल हो जाता हूँ। दरअसल आजकल की भारी महँगाई ने भारतीय जनता के प्राणों को दबोच रखा है। हिन्दुस्तान में बैठे हुए लोग यही समझते हैं कि सारी दुनिया के लोग सुख चैन में हैं, सिर्फ हमारी सरकार हमारे लिए कुछ नहीं करती। लेकिन अरबों के देश में जाकर मेरा यह भ्रम टूट गया। मुझे वहाँ जाकर यह महसूस हुआ कि महँगाई का अभिशाप केवल हिन्दुस्तान को ही नहीं लगा हुआ है, दुनिया के दूसरे देश भी उसकी जकड़ में बुरी तरह फँसे हुए हैं।

नोट सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं वरन् दूसरे देशों में भी बढ़ जरूरतों को पूरा करने के लिए छापे जा रहे हैं। हिन्दुस्तान की अर्थ व्यवस्था और उसके रुपये की कीमत हमें अपने घर में या देश में बैठ कर, ठीक-ठीक मालूम नहीं हो पाती। भारतीय रुपया कितना खरा और करारा है भारत की अर्थ-व्यवस्था की बाहर कितनी साख है यह तो समुद्र पार करके ही ठीक से जाना जा सकता है।

कुछ उदाहरण लीजिए

हमने पालम पर चाय पी। चाय का प्याला तीन आने में मिला। कराची में चाय पी तो एक प्याला चाय के आठ आने वसूल किये गए। दमिश्क में वही चाय का प्याला कोई एक रुपये से ऊपर पड़ा और काहिरा में भी इससे सस्ता नहीं मिला।

दिल्ली में आज से एक वर्ष पूर्व बूट पालिश कराने के दो आने लगते थे। कराची के हवाई अड्डे पर आठ आने दमिश्क में एक रुपया और काहिरा में भी इससे कुछ सस्ता नहीं था।

दिल्ली में एक कमीज की धुलाई दो आने दमिश्क में एक रुपया और काहिरा में कोई सवा रुपये के आस-पास।

अन्य चीजों की कीमतों का अनुपात भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

शराब मैंने पी नहीं, लेकिन अपने एक साथी का शराब का बिल अवश्य देखा था। एक सप्ताह में कोई तीन सौ रुपये की शराब वह पी गए थे। मेरे साथी भारी पियक्कड़ों में से नहीं थे। इसलिए मैंने यही अनुमान लगाया कि शराब वहाँ बहुत ही महँगी बिकती है।

चलते समय मैंने और मेरे मित्रों ने बाल-बच्चों के लिए कोई छोटी-मोटी खरीददारी की। तब हमें दाल-आटे का भाव मालूम हुआ। नई दिल्ली बम्बई और कलकत्ता के मुकाबले सीरिया और मिस्र के बाजारों में चीजें दुगुनी से अधिक महँगी थीं। पर घरेलू उद्योग की चीजें अवश्य सस्ती थीं। लेकिन कुटीर उद्योग की चीजें तो हमारे देश में और भी सस्ती मिलती हैं।

मेरे सिगरेट पीने वाले साथी भी अक्सर झींकते रहते थे। आठ-दस रुपये रोजाना उनके सिगरेट-माचिस पर खर्च हो जाते थे।

मैं आपको मिस्र के पौंड की कीमत का हाल बताता हूँ। जब हम लोग पालम से रवाना हुए तो मालूम हुआ कि मिस्री पौंड का भाव सोलह रुपया है। कुएत पहुँचने पर उसका भाव तेरह और चौदह रुपये मालूम हुआ। दमिश्क में बारह और तेरह का भाव था। लेकिन काहिरा में खुद मैंने नौ रुपये का एक पौण्ड खरीदा था।

इस यात्रा में मुझे महसूस हुआ कि यदि किसी भारतवासी के पास अरब देशों की मुद्रा की व्यवस्था नहीं है तो कोई हर्ज की बात नहीं है। भारतीय सिक्के से उसका काम हर जगह बखूबी चल सकता है। समस्त अरब देशों में केवल बड़े-बड़े बैंक, होटल या मुद्रा परिवर्तन केन्द्र ही भारतीय सिक्का स्वीकार नहीं करते बल्कि वहाँ के नाई, टैक्सी, धोबी बजाज, खानसामे और बैरे भी भारतीय रुपया पाकर खुश होते हैं। शायद एक्सचेंज में उससे उन्हें कुछ अधिक प्राप्त हो जाता होगा। जहाँ कहीं भी हमको होटल के बैरों, मोटर के शोफरों या शाही निवास-स्थान के केयरटेकरों को बख्शीश देनी पड़ी वहाँ उन्होंने हमसे आरजू करके भारतीय रुपये की माँग की। कुएत में तो खैर राजकीय मुद्रा ही भारतीय सिक्का है लेकिन दमिश्क और काहिरा में

एलेक्जेंड्रिया और पोर्ट सईद में, मस्जिदों के पास और पिरामिडों के निकट कहीं भी आप भारतीय रुपया जेब में डालकर निकल जाइए, दुकानदार आपका दिल से स्वागत करेंगे।

और तब मुझे मालूम हुआ कि 'घर का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध' इस प्रकार होता है कि हम अपनी सरकार को कोस भले ही लें लेकिन बाहर जो उसने साख बनाई है उसे हम अपने ही घर में अपनी ही दुनिया में कूप-मण्डूक रहकर ही ठीक नहीं आँक सकते। न रहा हो हिन्दुस्तान अब सोने की चिड़िया लेकिन आज भी उसके कागज के पत्र विदेशियों के लिए कम मूल्यवान नहीं।

४

अष्टम संस्कार

पुराने जमाने में अगर मैंने ऐसी गलती की होती तो मेरे बिरादरी वालों ने अवश्य ही मेरे बाल मुँड़वा दिये होते। मुझे निश्चय ही पंचगव्य पिला दिया होता, और मुझे सिर्फ गंगा-स्नान का ही नहीं अपितु पंडित और पुरोहितों को मिठाई खिलाने का भी पुण्य-फल प्राप्त हो गया होता। मैंने कोई साधारण अपराध नहीं किया था। मैंने मनु महाराज द्वारा आर्यजनों के निवास के लिए निर्दिष्ट सरस्वती दृषद्वती नदियों की सीमा का ही उल्लंघन नहीं किया था वरन् 'स्वर्गादपि गरीयसी' भारत-भूमि को त्यागकर, मैं अरब सागर की सीमा को पार कर गया था। और पहुँचा कहाँ? जिसको हमारे पूर्वज यवन और म्लेच्छ आदि पदवियों से विभूषित किया करते थे।

मुझे याद है कि बचपन में जब हमारे मथुरा के मन्दिर में मुसलमान नक्कारची नौबत बजाने के लिए ऊपर बंगले में आया करते थे, तो हमारे पिताजी उनकी छाया से भी बचने के लिए दरवाजे के किवाड़ बंद करवा लिया करते थे। समय का फेर देखिये कि उन्हीं का पुत्र खालिस मुसलमानों के देश में, जहाँ नाई-धोबी कुली-बावर्ची सब ही मुसलमान थे अपने पिता से बिना पूछे सैर करने के लिए चुपचाप उड़ गया था। आज मुझे वह दिन भी याद है, जब अब से तीस बीस वर्ष पूर्व मेरे पिताजी ने मुझे काशी ले जाकर वहाँ के गोपाल मन्दिर में मुझे ब्रह्म सम्बन्ध दिलवाया था। मेरे ब्रह्म संबंध से पूर्व मेरे दीक्षा-गुरु ने मुझसे एक मनचाही प्रतिज्ञा लेने को कहा था। मेरे पिताजी की बड़ी इच्छा थी कि इस प्रतिज्ञा में

मैं नल का पानी पीना छोड़ दूँ, लेकिन मैंने वैसा नहीं किया। मैंने सिर्फ़ यही प्रतिज्ञा ली कि इस जीवन में जो कुछ भोग करूँगा वह भगवान् के अर्पण करके करूँगा। ऐसे परम वैष्णव पिता का ऐसा 'ब्रह्म' संबंधी पुत्र जब अरबों के देश में पहुँचा तो उसकी आँखें खुल गईं। दाल रोटी कढ़ी, खीर, रायता-चटनी और अचार-पापड़ की तो कौन कहे सारे अरब देश में मुझे पूड़ी-कचौड़ी लड्डू-जलेबी, बर्फी और कलाकन्द की एक भी दूकान नहीं मिली। और-तो-और, कहीं फाँकने के लिए भुने हुए चने भी दिखाई नहीं दिये। यह नहीं कि इस देशों में हिन्दू न रहते हों। क्या कुएत क्या सीरिया क्या मिस्र इन तीनों देशों में भारतीय व्यापारी फैले हुए हैं लेकिन न यहाँ भारतीय खाद्य-पदार्थों की कहीं दूकानें हैं और न कहीं निरामिष भोजनालय। सुनते हैं कि सोवियत रूस यूरोप और अमरीका में निरामिष भोजियों के लिए कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती लेकिन अरब देशों में तो निरामिष भोजी के लिए पग-पग पर कठिनाइयाँ ही-कठिनाइयाँ हैं। अगर अरबों को दही खाने का शौक़ न होता और वहाँ के बड़े-बड़े होटलों में वैराइटी के नाम पर चावल प्राप्त न हो पाते तो मेरी क्या हालत हुई होती इसे चौबिया उपवास करने वाले अच्छी तरह जान सकते हैं।

आप मेरी हालत का सही-सही अंदाज़ा नहीं लगा सकते। जब मेरे दल के दूसरे पत्रकार साथी बड़े-बड़े होटलों के ऊँचे-ऊँचे अधिकारियों या गवर्नरों की दावतों में मदिरा के प्याले छलक-छलकर, विभिन्न प्रकार के चलचर नभचर और जलचरों के भूने पकाए और जलाए हुए मांसों को वाह-वाह करके प्लेट-पर-प्लेट साफ़ करते चलते थे तब मैं उन्हीं की बगल में बैठा हुआ मन मारे चावल में दही मिलाकर धीरे-धीरे प्लेट पर अपनी चम्मच खटकाता रहता था।

लोग मेरा परिहास करते थे कि पण्डितजी आप मांस भले ही न खाएँ, मदिरा भले ही न पीएँ लेकिन भ्रम तो आपका बचा नहीं। पता है आपको कि चावल पकवान नहीं है यह कच्ची रसोई है। आपके

पिताजी तो किसी के हाथ की पक्की रसोई भी नहीं जीमते और तुम मियाँ, मुसलमानों के हाथ के बादाम खा रहे हो। कभी-कभी तो और भी बड़ा धर्म-संकट उपस्थित होता कि जब किसी बड़े अधिकारी की कोई रूप गुणसंपन्न पत्नी मेरी बगल में बैठी होती और मुझे जूठे हाथों से कोई फल या जूस या मक्खन की प्लेट या टोस्ट के टुकड़े बड़ा और शिष्टाचारवश भेंट करती तो हृदय के किसी कोने में सोये हुए संस्कारों पर से राख उड़ जाती। एक चिनगारी-सी चमक कर मेरे अन्तर मन से कहने लगती : 'हे ब्राह्मणपुत्र और मथुरावासी वैष्णव ! यह तू क्या कर रहा है ?' और तब याद आता बचपन में पिताजी का बताया हुआ यह नीति वाक्य 'आचारः प्रथमो धर्मः' अर्थात् आचार ही पहला धर्म है।

गांधीजी की शिक्षाओं के परिणाम स्वरूप पिताजी के आचार की बात मेरे युग-धर्म प्रवाह में अपने पैर नहीं टिका सकती थी। मैं अपने मन से छुआछूत को हिन्दू-मुस्लिम के भेदभाव को भूल चुका था फिर होटलों में जाकर प्रगतिशील लोगों के साथ रहकर पत्रकारिता का पेशा अपना कर भी मांस-मदिरा और धूम्रपान से एकदम अछूता ही रह गया ! यद्यपि मेरे मित्रों ने अनेक अवसरों पर प्रमाण सहित मुझे समझाने की चेष्टा की कि अण्डा और मछली सामिष भोजन नहीं है। चाय और काफ़ी की तरह बीयर भी निर्दोष पेय है उसे मदिरा नहीं कह सकते। लेकिन उनकी यह बात मेरे गले में सिर्फ़ इतनी ही उतरी थी कि मैं मांस खानेवाले लोगों के बीच बैठकर बिना ग्लानि के अपना निरामिष आहार ले सकता था और लोगों को व्हिसकी बीयर पीते देखकर भी मुझे न तरंग उठती थी और न उबकाई आती थी। अपनी इसी सहिष्णुता के बल पर ही मैंने अरब देशों की यात्रा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। लेकिन वहाँ पहुँचकर मेरी सहिष्णुता के पैर लड़खड़ा गये। वहाँ पग-पग पर मांस-मदिरा और धूम्रपान का दौरदौरा था और यहाँ इन सब चीजों से बचना एक प्रकार से सभ्यता और शिष्टाचार के खिलाफ़-सा था लेकिन अरबों की दुनिया

में भूख-प्यास को शांत करने की भी तो एक समस्या मुँह बाए खड़ी ही थी।

मेरा हाल तो यह था कि जब मेरे साथी किसी की बाटी चबाते या हड्डी चिचोड़ते तो मुझे उस निरपराध प्राणी का जीवन अक्सर अपनी कल्पना में फड़फड़ाता हुआ दिखाई देता। कहते हैं मांस खाने वालों के लिए मध्य एशिया (सोवियत रूस का भी हिस्सा) स्वर्ग है। मांस की जितनी अधिक किस्में अरब देशों में बनती हैं उतनी कहीं नहीं। मेरे साथी लोग इन सब ही किस्मों का पूरा-पूरा स्वाद लेने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे और मैं भी अपने मन की ग्लानि को दबाने में अपनी तरफ से कोई कसर नहीं उठा रहा था।

मेरी दोहरी परीक्षा हो रही थी। एक तो वही चावल उबली हुई तरकारियाँ मक्खन मौसमी का रस और दलिया के अलावा मुझे कहीं कुछ मिल नहीं पाता था। पेट भरता था लेकिन मन नहीं भरता था। दूसरी ओर मेरे साथी मुझे दिखा-दिखाकर, चिढ़ा चिढ़ाकर और कभी उकसा-उकसाकर तीनों टाइम प्लेटों-पर-प्लेटें साफ करते थे। और वे हर बार खा-पीकर ऐसी डकार लेते थे कि जिसका अर्थ यह होता था कि पण्डित जी छोड़ो इन ढकोसलों को पार्टी में शामिल हो जाओ और खाओ-पिओ मौज करो! कोई-कोई तो यह भी कह देता था कि अगर यही सब करना था तो जर्नलिज्म में क्यों आए थे? तो दफ्तर में बैठे-बैठे डेस्क वर्क करते रहते! विदेशों की खाक क्यों छानी? और जब विदेश में आ ही मरे तो हम कौन तुम्हारे घर जाकर कह देंगे? जो यहाँ की विशेषता है उसे बिना चखे, बिना भोगे बुद्ध की तरह वापस लौट जाने में क्या मजा है?

एक बार तो बड़ा भारी धर्म-संकट भी उपस्थित हो गया। घटना कुवैत की है। रमजान के दिन थे। हम लोग वहाँ के शेख के यहाँ भोजन पर आमन्त्रित थे। कोई सौ आदमियों का भोजन एक ही लम्बी मेज पर परोसा हुआ था। सब लोग साथ बैठकर खाने वाले थे। रमजान के दिनों में एक ही बार शाम को खाना मिलता है। इसलिए भूख

भी बड़ी कड़ककर अपी हुई थी। हम लोग खाने के कमरे में पहुँचे। राज्य के सभी ऊँचे अधिकारी वरिष्ट सैनिक और सम्मानित अतिथि इस भोज में आमंत्रित थे। खाने की मेज छोटी-छोटी चौकियों को जोड़कर लगाई गई थी। सब उसके आसपास आल्ती-पाल्ती मारकर जम गए। सैकड़ों प्रकार के भोज्य पदार्थ चोष्य और लेह्य वहाँ परोसे हुए थे। जैसे हमारे यहाँ अन्नकूट या छप्पन भोग होता है उसी प्रकार का वहाँ दृश्य उपस्थित हो रहा था। लेकिन धर्म की गति देखिए कि जहाँ मुझे बैठने को जगह मिली थी वहाँ एक परात जैसी प्लेट में भूना हुआ साबुत दुम्बा पड़ा हुआ था। इसके अन्दर भाँति-भाँति के मेवे मसालों से युक्त चावल भरे हुए थे। मैं तो पहले दस-पन्द्रह मिनट सिर्फ देखता ही रहा कि कोई उस दुम्बे की टांग उखाड़ कर ले गया कोई उसके कलेजे को ले उड़ा किसी ने उसके पेट में हाथ डाल कर मेवे-मसाले को निकाल लिया। मेरे साथी भी आज मन-ही-मन बड़े खुश थे। सोच रहे थे कि पण्डित आज फँसा? दरअसल में फँस तो गया ही था। मेरे खाने योग्य चीजें वहाँ बहुत-सी थीं—चावल थे, सिकन्जबीन भी कुछ जलेबीनुमा पदार्थ भी थे कुछ पुए जैसी चीजें भी थीं लेकिन वहाँ का हाल अजब था। सिकरन का प्याला एक उठाता पीता और रख देता कि दूसरा उसे फौरन उठा लेता। और जब तक वह उसे छोड़ भी न पाता कि तीसरा उसकी इन्तजार में रहता। मांस वाले हाथ से चावल और चावल वाले हाथ से मछली, और मछली वाले हाथ से दुम्बा, और दुम्बे वाले हाथ से मिठाइयों पर लोग ऐसे टूट कर पड़ रहे थे जैसे अकाल के भूखे हों। मुझे वहाँ अपने योग्य सिर्फ एक ही चीज दिखाई दी, वह थे लम्बे-लम्बे हरी छाल के पके केले। मैंने घरकर सत्यनारायण की कथा का ध्यान केलों की तरफ हाथ बढ़ाया। शायद केले भी मेरे कर स्पर्श से कृतार्थ हुए हों क्योंकि भोजन की इस भारी भीड़ में उनकी क़द्र करनेवाला सिर्फ एक मैं ही था।

जिस प्रकार लंका में सीता ने राक्षसों के बीच अपने सतीत्व की रक्षा की थी वैसे ही मैं यात्रा पर अपने भोजन धर्म को निबाहता

रहा। जैसे वैदेही को जब रावण से बात करनी पड़ी तो उसने तिनके की ओट धारण कर ली थी वैसे ही मैं भी दही-चावल की ओट में अपनी गाड़ी को खींच ही ले गया। लेकिन दमिश्क के हवाई अड्डे पर मेरे साथियों का कहना है कि मेरा धर्म भ्रष्ट हो गया।

उस दिन दमिश्क की पहाड़ियों पर बर्फ़ पड़ रही थी। हवा ऐसी जोर की थी कि शरीर के कपड़े उड़े जा रहे थे। हम लोग दिन भर के थके-मांदे भूखे-प्यासे हवाई अड्डे पर उतरे तो सबके पेट में चूहे बिलबिला रहे थे। हवाई अड्डे के बाहर एक छोटा सा रेस्टोरां था। कुछ शीत से बचने के लिए हम सब भाग उसमें जा घुसे। आर्डर दिए गए। किसी ने कुछ मँगाया और किसी ने कुछ लेकिन मेरे मँगाने योग्य वहाँ एक भी वस्तु नहीं थी। सीरिया और मिस्र में काफ़ी के प्याले भी कम्बख्त घूँट-घूँट भर के होते हैं। चाय में दूध डालने का रिवाज भी शायद वहाँ नहीं है। चाय भी ऐसी होती है कि उसमें और काफ़ी में कोई खास फ़र्क मालूम नहीं पड़ता। कुछ ठंडे पेय अवश्य थे पर उस ठंडक में उन शीत पेयों को मेरा मुझ जैसे जुकाम प्रिय व्यक्ति के लिए बीमारी को निमन्त्रण देना था। मैं पशोपेश में ही था कि क्या करूं क्या न करूँ कि मेरे पास एक साथी पत्रकार आए और कहने लगे पण्डितजी आप फ़िक्र न कीजिए मैं आपका अभी प्रबन्ध करता हूँ। देश-विदेश घूमने का उनका अनुभव बहुत है। मध्य-एशिया भी वह कई बार आ चुके हैं। उन्होंने मुझे बताया कि यहाँ एक कस्टरीडिश बनती है जो 'वेजिटेरियन' होती है। इसे वह मेरे लिए मंगवा देंगे। उस वक्त भूख इतनी लगी थी कि उनका कहना ही मेरे लिए पर्याप्त संतोष का कारण था। लेकिन फिर भी मैंने उनसे स्वभाववश पूछ ही लिया कि वह किस चीज की बनती है। उन्होंने बताया कि जैसे अपने यहाँ गाजी की खिचड़ी बनती है न बस ठीक वैसे ही समझ लो। मैं फ़ौरन ही राजी हो गया। थोड़ी देर के बाद मेरे सामने वह डिश आ गई। भूख में तो रिवाड़ भी पापड़ लगते हैं। इस पर वह तो ताजी बनी हुई गर्म

चीज थी। बड़ी सोंधी लपट उसमें से आ रही थी। मैंने भगवान का ध्यान धरकर जो पहला कौर गले के नीचे उतारा तो ऐसा स्वाद आया कि पता ही नहीं चला कि प्लेट कब खत्म हो गई। प्लेट समाप्त करके मैंने काफ़ी पी और अपने साथियों की ओर वैसे ही तृप्ति से देखा जैसा मेरे अतृप्त रहने पर वे प्राय: मुझे देखा करते थे। मेरे इस मूड का मेरे साथियों ने बड़ा स्वागत किया। उनमें से एक बोला "लो पण्डित, आज एक सिगरेट भी पीओ।"

मेरे क्षमा मांगने पर दूसरा बोला— "अभी नहीं पण्डितजी धीरे धीरे सब बातें सीखेंगे। आज तो आपने सिर्फ अण्डा खाया है। कल इनको एक पैग पिलाएँगे और परसों सिगरेट।"

तीसरा बोला "लेकिन भाई! पण्डित के साथ तुम लोगों ने किया बुरा। बेचारे को घर जाकर गंगा स्नान करना पड़ेगा।"

हमारे दल में एक दक्षिण भारतीय भी थे। वह हँसकर कहने लगे "कोई बात नहीं मिस्टर व्यास! आज आपका प्रथम संस्कार हो गया है। इस खुशी में अब हम सबका बिल आपको ही चुकाना चाहिए।"

मैंने कुपित नेत्रों से मुझ पर दया करने वाले साथी की ओर देखा। वह बड़े गम्भीर भाव से बोले "नहीं पण्डितजी! इसमें कोई अण्डा वण्डा नहीं था। यह सब लोग आपको बना रहे हैं।"

लेकिन उनकी इस बात को मेरे सब ही साथियों ने बड़े ज़ोरदार कहकहों में उड़ा दिया। मेरे मुँह से तृप्ति का भाव गायब हो गया। एक मिचलन सी मुँह में उठने लगी। ऐसा लगा कि जैसे मैं रो पड़ूँगा। वातावरण अब कुछ गम्भीर हो गया था। मेरे साथी पुन: उठकर मेरे पास आए और मेरा कंधा थपथपाते हुए बोले "व्यासजी! मैं आपके साथ दगा नहीं कर सकता। कहिए तो बैरे को बुलाकर पुछवा दूँ।" इस पर फिर अन्य सभी साथी मुस्करा उठे। कि अब तो पूछने और पुछवाने से क्या होता है? अण्डा तो पेट में गया। वह बाहर नहीं आ सकता।

तब ही मेरे मन में यह विचार उठा कि धोखे से तो अगस्त ऋषि को भी बकरा खिला दिया गया था। उससे अगस्त के ज्ञान या ऋषित्व में कोई कमी नहीं आई और न उनका धर्म ही नष्ट हुआ। फिर यहाँ तो इस बात का भी प्रमाण नहीं कि अण्डा है भी या नहीं। फिर मैंने तो खिचड़ी हो या अण्डा भगवान को समर्पित करके उसे पाया है वह तो महाप्रसाद था। फिर मैं ग्लानि क्यों करूँ! और मैंने अपने साथियों से कहा 'अच्छा यारो! अण्डा था तो होने दो। अण्डा भी मथुरा के पण्डा के पेट में आकर रसगुल्ले का सा ही काम करेगा।'

कहने को तो मैंने उनसे यह कह दिया लेकिन मैं तब से अब तक कई बार यह सोच चुका हूँ कि क्या सचमुच उस दिन दमिश्क में मेरा अडम-संस्कार हो गया था ?

५

गांधी टोपी ज़िन्दाबाद!

अपने जीवन में गांधी टोपी के मैंने कई चमत्कार देखे हैं। एक ज़माना था जब लोग गांधी टोपी लगाते डरते थे। एक वह भी समय था जब इस टोपी की आन और बान रखने के लिए लोग अपनी जान तक कुर्बान कर देते थे। उसके बाद वह वक्त भी आया जब गांधी टोपी राजमुकुट बन गई। देखते-देखते वह दिन भी आने लगा है, जब जगह-जगह यह उदासी आने लगी है और लोग इसे पहनने में पुनः हिचकने लगे हैं।

जहाँ तक मेरा संबंध है टोपी के मामले में मैं बंगाली तर्ज़ का आदमी हूँ। आदतन खादी पहनते तो कोई पच्चीस वर्ष बीत गए परन्तु गांधी टोपी मैं प्रायः नहीं ही लगाता। लेकिन जब मैं विदेश जाने लगा तो मुझे मित्रों ने सलाह दी कि वहाँ मैं गांधी टोपी अवश्य लगाता रहूँ। मेरी एक महिला मित्र ने बताया कि नेहरू जी के कारण विदेशों में गांधी टोपी बड़ी ही लोकप्रिय हो गई है। उन्होंने यह भी कहा कि सचमुच मेरे लम्बे चेहरे पर गांधी टोपी खूब ही खिलेगी। इसलिए पहली बात के कारण तो ज़रा कम मगर दूसरों की निगाह में अच्छा दिखने के लिहाज़ से मैं अपने साथ कुछ अच्छी कलफ़दार गांधी टोपियाँ ले गया।

पालम पर हवाई जहाज़ में सवार होते ही मैंने गांधी टोपी चढ़ा ली। पहनते ही मन में अजब तरह की फुरफुरी-सी उठी। ठीक वैसी ही जैसी कि नया गहना पहनने पर किसी नव-यौवना के मन में उठती होगी कि कोई उसे देखे कोई कुछ कहे। वायुयान में अपने साथी पत्र-

कारों के बीच में राजमुकुट को पहनने मात्र से प्रतिष्ठित मान लिया जाऊँगा ऐसी आशा रखना तो मेरी मूर्खता थी लेकिन हाँ उस समय मुझे अपनी उन महिला मित्र का खयाल अवश्य आया और महसूस हुआ कि इस यात्रा में बस यही कमी रह गई है कि इस समय कोई यह बताने वाला नहीं कि टोपी मुझे कैसी फब रही है ? खैर इस कमी को मैंने खुद ही दर्पण देखकर पूरा कर लिया। मेरा तन ही नहीं मन भी इस समय हवा के घोड़े पर सवार था। खादी की पैंट जोधपुरी कोट और नुकीली गांधी टोपी सब मिलाकर सच बताऊँ मैं ऐसा लग रहा था कि जैसे किसी पिछड़े हुए प्रदेश का नया भरती किया कोई कांग्रेसी मन्त्री ही होऊँ।

लेकिन खयालों में मंत्री बने हुए मुझ भावुक व्यक्ति का मूड साथियों ने कुछ ही मिनटों में इस तरह खराब कर दिया कि आपसे क्या कहूँ ? टोपी को लेकर बुद्धिजीवियों में वहाँ बहस छिड़ गई। मेरा कहना था कि अपने घर में नहीं तो कम-से-कम बाहर हमें अवश्य ही अपनी राष्ट्रीय पोशाक में रहना चाहिये।

इस पर पलट कर मुझे दो टूक जवाब दिया गया *"यह तुमसे किसने कह दिया कि गांधी टोपी राष्ट्रीय पोशाक है ? यह आज के शासकों की पोशाक हो सकती है राष्ट्रीय हर्गिज नहीं।*

मैं जोर-शोर से खादी को राष्ट्रीय पोशाक सिद्ध करूं कि एक साहब बीच में ही बोल उठे रहने भी दो क्यों हम लोगों की रही-सही आजादी को तुम कांग्रेसी कठमुल्ले खत्म करने पर तुले हो। संसार में यही तो एक ऐसा देश है जहाँ खाने की, पीने की पहनने की और बोलने की पूरी आजादी है। अगर हमने भी अपनी अनेकता में एकता वाली विशेषता खो दी तो हममें और दूसरे मुल्कों में फर्क ही क्या रह जायेगा ?

अनेकता में एकता के सिद्धान्त पर बहस ने नया मोड़ लिया ही था कि एक नौजवान ने बचन की आजादी का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित कर दिया। उसने गांधी टोपी को ऐसी कुत्सित उपमा दी कि

बुद्धि के इस वमन पर मेरा जी मिचलाने लगा। मैंने अपने आपको इस वहस से निकाल लिया। वायुयान की खिड़की से नीचे झांकने लगा। लेकिन नीचे भी मन को प्रसन्न करने वाला दृश्य नहीं था। हमारे देश के अनेकतावादियों ने बुद्धिभोजियों ने एक ही मां के दो टुकड़े कर डाले थे। एक ही धरती पर दो देश बना डाले थे। अब अपने देश में ही हम विदेशी थे। कराची आने वाला था।

लेकिन यह चर्चा तो मैंने यों ही कर दी। हम हिन्दुस्तानी अपनी अपनों की, अपनी चीजों की सुध कब करते ही कहाँ हैं ? गांधी को ही जब हम लोगों ने नहीं जीने दिया तो उसके नाम की टोपी की क्या कीमत ? परन्तु बाहर ऐसा नहीं है। गांधी हिन्दुस्तान से मर कर बाहर जन्म ले रहा है। उनकी टोपी भी यहाँ से उछल कर बाहर चम रही है। कम-से-कम मेरे साथ तो यही हुआ। मैं अरब देशों में गया लेकिन अरबी मुझे नहीं आती थी। अंग्रेजी भी ऐसी नहीं कि अपने भावों को सहज ढंग से व्यक्त कर सकूं। लेकिन वहाँ बड़े-बड़े लोगों से मिलना पड़ा बड़े-बड़े होटलों में ठहरना पड़ा। मुझे न विदेशी शिष्टाचार आता था और न सही तरीके से छुरी और कांटा पकड़ने की ही तमीज थी। कुछ तो ब्रजवासी और कुछ कविता का शौक स्वभाव में लापरवाही भी कम न थी। पत्रकारों का और कोई गुण चाहे न सीखा हो लेकिन उनका अल्हड़पन तो मुझमें सोलहों आने था ही।

कोई एक दाप हो तो गिनाऊँ ? न मैं शराब पीता था और न मांस ही खाता था। विदेश जाने वाले के लिए ये अवगुण अक्षम्य हैं। मेरे साथी भी मेरे इन अवगुणों से कम परेशान न थे। वे मुझे पग-पग पर समझाते-बुझाते रहते लेकिन जब देशी तोता रामनाम रट कर नहीं देता तो खीजते भी कम न थे। अन्त में हारकर उन्होंने मुझे अपने हाल पर छोड़ दिया। आखिर वे मेरे लिए अपने आपको असभ्य कैसे कहला सकते थे ?

पर मैं आपसे सच कहूँ कि केवल इस गांधी टोपी की बदौलत मैं कहीं भी किसी तरह से घाटे में नहीं रहा। न मुझे कहीं नि...

असुविधा हुई, कहीं कोई अभाव खला। मेरे साथी मुझे चाहे जो समझते रहे हों लेकिन गांधी टोपी के बल पर खाने की मेज से लेकर प्रेसिडेंट नासिर तक की मुलाकात में लोग मुझे दल का नेता समझते रहे और हाथ मिलाने से लेकर फोटो खिंचवाने तक के कामों में मुझे सदैव वरिष्ठता प्राप्त होती रही।

बाजार हाट में गली कूचों में नये-पुराने शहरों में मेरे साथी और गाइड मेरी काफ़ी खोज खबर रखकर चला करते थे। लेकिन मेरी सदैव यह इच्छा रहा करती थी कि कहीं खो जाऊँ, कहीं रास्ता भूल जाऊँ और फिर किसी युवक या सुन्दर-सी दिखाई देने वाली युवती से पूछूं, "बताओ मैं कहाँ हूँ मेरा ठिकाना कहाँ है? लेकिन मेरे सिर गांधी टोपी लगी होने के कारण न तो मेरे मित्रों को मेरे लिए पुलिस स्टेशन पर फोन करना पड़ा और न मुझे ही किसी से कभी अपनी तरफ से बोलने की कोशिश करनी पड़ी। रास्ता भटकते ही लोग प्रश्न करने लगते थे हिन्दी ?" यानी क्या तुम हिन्दुस्तान के रहने वाले हो ?

मेरे स्वीकृति सूचक सिर के हिलते ही उनकी आँखों में चमक आ जाती और वे बड़े उल्लास से हाथ ऊपर उठाकर कहते 'नेहरू !

इसका मतलब यह होता था कि तुम्हारा नेता नेहरू बहुत बड़ा आदमी है। उसकी हम इज्जत करते हैं उसे हम प्यार करते हैं।

और इससे पहले कि मैं भी नेहरू जी की प्रशंसा में अपने कुछ शब्द जोड़ूँ वे 'फ्रेंड्स' कहकर लपकते थे गहककर मिलते थे अंक में भर कर अगर पास में कहीं 'रेस्टोराँ' होता तो काफ़ी या कोका-कोला भी पिला देते थे और प्रायः खुद साथ जाकर होटल तक छोड़ जाया करते। दमिश्क में एक नाई ने तो मेरी मुफ्त में हजामत भी बना दी। वह देर तक नेहरू जी के बारे में बात करता रहा। उसे मेनन की स्पीच के भी कई अंश याद थे। उसकी एक ही तमन्ना थी कि कोई ऐसा मौका मिले कि वह नेहरू जी के बाल काटने का मौका पा जाए।

यह गांधी टोपी का ही पुण्य था कि मैं विदेशों में कई पापों से बच गया। क़ाहिरा के नाइट क्लब" बड़े नामी हैं। जब मैं हिन्दुस्तान से

चलने लगा, तो मेरे एक कवि मित्र ने एक विदाई-समारोह में मुझे लक्ष्य करके एक कविता पढ़ी थी। कविता का आशय यह था 'तुम अरब जा तो रहे हो लेकिन मेरे दोस्त वहाँ की हूरों से बचना ! ऐ भौंरे का सा स्वभाव रखने वाले मेरे कवि वहाँ की कलियाँ रात में महकती हैं उन रजनी गन्धाओं के फेर में पड़कर तुम हमारी भाभी जी को कहीं भूल न जाना ? '

मेरे कुछ साथी अक्सर इन रात्रि क्लबों का रस लिया करते थे। लेकिन रोज सुबह लौटकर इस बात पर खेद प्रकट करते थे कि आज इतने पौंड से कट गए कम इतने पौंड खर्च हो गए। कुछ शराब इतनी पी आते थे कि सुबह मेरे पास चूरन माँगने आते या अमृत धारा अथवा एस्प्रो की तलाश करते। उनमें से एक अक्सर मुझसे कहा करते थे "यार, क्यों बेकार विदेश में भी आकर मक्ख मार रहे हो ? आज चलो न हमारे साथ ?

मैं उत्तर देता 'मैंने कब इनकार किया ? मैं तो तैयार हूँ। मगर तुम साथ ही कहाँ ले जाते हो ?

इस पर वह कहते 'साथ कैसे ले जाएँ ? हर वक्त तो तुम यह गांधी टोपी चढ़ाए रहते हो ? इसे उतार कर किसी दिन चलो हमारे साथ ? '

लेकिन न मैं कभी टोपी उतारता और न कभी कोई मुझे अपने साथ ले जाता। अगर मेरे सिर पर गांधी टोपी का साया न होता तो पता नहीं क्या होता ? आदमी के मन को और औरत के पैर को फिसलने में क्या कहीं कुछ देर लगती है ? लेकिन वह तो गांधी टोपी ही थी कि जिसने मुझे उबार लिया।

गांधी टोपी का सबसे बड़ा चमत्कार तो मैंने २० मार्च को क़ाहिरा में देखा। मिस्र और सीरिया का मिलन सप्ताह मनाया जा रहा था। सीरिया के मिलन के बाद प्रेसिडेंट नासिर पहली बार सार्वजनिक सभा में भाषण करने वाले थे। हजारों लोग देहातों से चलकर इस जलसे के लिए क़ाहिरा आए थे। सभा में बड़ी भारी भीड़ थी। हम लोग

भी उस जलसे में आमंत्रित थे। सभा की कार्रवाई शुरू होने से कोई आध घंटे पहले हमें वहाँ ले जाया गया। पंडाल खचाखच भरा हुआ था। जैसे ही हम लोगों ने प्रवेश किया सभा-मंडप तालियों से गूँज उठा। लोग उठ-उठकर देखने लगे। कुछ नारे भी अरबी भाषा में हिन्दुस्तान का नाम लेकर लगाए जा रहे थे। दल के लोगों में मैं सबसे आगे था। मेरे पीछे क्या लगभग साथ-ही-साथ एक भारतीय महिला अपनी सुहावनी वसंती साड़ी में चल रही थीं। हम दोनों में परस्पर इस बात पर मधुर बहस छिड़ गई कि ये तालियाँ किसके लिए बज रही हैं? मेरा कहना था कि यह गांधी टोपी का चमत्कार है लेकिन उनका मत था कि यह भारतीय साड़ी की ही महान महिमा है। लेकिन जब अरबी लोगों ने मुझे वहाँ घेर लिया और बढ़-बढ़कर हाथ मिलाने लगे हस्ताक्षर कराने लगे तो शायद उनका भ्रम दूर हो गया कि यह सब गांधी टोपी का ही प्रभाव था हिन्दुस्तान की ही महानता थी नेहरू जी का ही बोलबाला था। हमारे दल में ही एक-से-एक पढ़े-लिखे अनुभवी और दुनिया देखे आदमी थे। यह तो बाने का ही प्रताप था कि जिसे धारण करके ठग भी साधु के रूप में पूजित होते हैं।

उसके बाद तो गांधी टोपी का दबदबा मेरे साथियों में भी छा गया। जिस दिन हम लोग प्रसिडेंट नासिर से मिलने जा रहे थे मुझसे कई मित्रों ने गांधी टोपी की माँग की। लेकिन तब तक मेरी सभी टोपियाँ मैली हो चुकी थीं। उस दिन मेरे पास एक ही झकाझक गांधी टोपी बची थी जिसे मैं किसी भी कीमत पर किसी को देने को तैयार न था।

६

मिस्र का मुर्गा भी करता क्रान्ति है

मालूम हुआ कि उसका नाम हाफ़ा है। पूछने पर किंचित लजाते हुए उसने बताया कि हीफ़ा शब्द का अरबी अर्थ पतली कमर वाली होता है। नाम उसका था भी सार्थक। लम्बी-छरहरी वह नौरंगी नीम सुनहरी, मिस्र के भूमि-सुधार विभाग की कोई अफ़सर थी।

मैं मिस्र के पुरुष अफ़सरों की आलोचना नहीं करता उससे मुझे क्या लेना? मैं तो इस लेख में सिर्फ़ उस समझदार युवती की सराहना करना चाहता हूँ। अपने विषय पर अधिकार रखना तो कुर्सी सबको सिखा देती है लेकिन वास्तव में अपने काम की सही जानकारी और उसमें अपेक्षित निपुणता कम लोगों को ही प्राप्त होती है। हीफ़ा ने जिस तरह से मिस्र के भूमि सुधार और कृषि उपलब्धि विषय को हमारे सामने रखा उससे उसकी बुद्धि विलक्षणता सहज में ही प्रकट होती थी। यदि उसने अपना भाषण रटा नहीं था, तो सचमुच कमाल की तैयारी थी उसकी।

उसने मिस्र की पुरानी भूमि व्यवस्था से लेकर क्रान्ति के बाद तक के परिवर्तनों पर विस्तार से प्रकाश डाला। बताया कि राजवंश से किस प्रकार बिना मुआवज़े के भूमि छीन ली गई है, और दूसरे बड़े ज़मींदारों को भूमि का मुआवज़ा किस अनुपात में दिया जा रहा है। मालूम हुआ कि वहाँ का किसान अपने पास काफ़ी एकड़ भूमि रख सकता है और वहाँ वर्ष में हमारी तरह दो नहीं तीन फ़सलें पैदा होती हैं। किसानों को किस प्रकार उत्तम बीज दिया जाता है, कैसे उनकी फ़सल बिकती है, उनकी सोसाइटियों का संचालन किस प्रकार होता

है ? यह सब हीफा ने बड़े सुबोध ढंग से बड़ी अच्छी अंग्रेजी में हमें समझाया।

उसे अपने देश के भूमि सुधार की बाबत ही नहीं दूसरे देशों की भूमि समस्या के सम्बन्ध में भी पर्याप्त जानकारी थी। उसे विनोबा जी के भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में भी कुछ बातें मालूम थी। बड़े उत्साह भरे शब्दों में उसने कहा था कि वह एक बार भारत इसलिए आना चाहती है कि इस ऐतिहासिक सन्त के दर्शन कर सके। उसकी बातों में हमें अतिशयोक्ति का पुट नजर नहीं आया। उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया था कि मिस्रवासी भूमि-सुधार के मामले में तो विशेष प्रगति नहीं कर पाए, लेकिन प्राप्त जमीन से अधिकाधिक कृषि उपलब्धि करने में उन्होंने बहुत कुछ किया है।

आप कहीं ऊब तो नहीं गए ? डरिए नहीं मैं आपको मिस्र की भूमि-व्यवस्था या कृषि उपलब्धि के आंकड़ों के जाल में फँसाने नहीं आ रहा। न मैं आपको यह बताने जा रहा हूँ कि वहाँ की लौकी गज-गज भर की तोरई फुट-फुट भर की ककड़ियाँ बाँह-बाँह लम्बी और मासटे तीन-तीन पाव के होते हैं। न मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि वहाँ की गाएँ भैंसों जैसी गदहे घोड़ों जैसे और भेंसें ऐसी होती हैं कि उनकी पीठ पर आचार्य कृपलानी जैसे कद के व्यक्ति आराम से सूँटी तान कर सो सकते हैं। मैं तो आपको सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि हीफ़ा नाम की वह बाला उस दिन हमें डूबते हुए सूर्य की बेला में शहर से बाहर ले गई थी। वह हमें एक मुर्गीखाना दिखाना चाहती थी।

मुझे मुर्गीखाना देखने में कोई दिलचस्पी न थी। लेकिन मैं हीफ़ा के अनुरोध को टाल न सका। कारण कि जहाँ उसे यह मालूम हो गया था कि मैं कविता की कुछ पंक्तियाँ गढ़ लेता हूँ वहाँ मुझे भी यह पता लग गया था कि हीफ़ा भी कभी-कभी मन की कल्पनाओं को शब्दों में पिरो लिया करती है।

वह मुर्गीखाना शहर से दूर एक खुली जगह में काफ़ी दूर तक फैला हुआ था। उसके कई विभाग थे। मिस्र की सरकार ने यह व्यवस्था

की है कि कोई भी किसान वहाँ से मुफ्त में एक बहुत अच्छी किस्म की मुर्गी ले आ सकता है। उसके बदले में उसे सिर्फ चार अंडे देने पड़ते हैं। ये अंडे उस मुर्गीखाना में वैज्ञानिक ढंग से सेए जाते हैं और एक मुर्गी की चार मुर्गियाँ बना ली जाती हैं।

बड़ा अजीब-सा दृश्य था। यह देखिए दो दिन के अंडे और यह लीजिए चार दिन का अंडा! इधर निगाह डालिए अंडे तैयार हो गए हैं। खाना के कर्मचारी ने अँगुली की एक हलकी-सी चोट अंडे के सिरे पर की कि चीं ची करता हुआ मुर्गी का एक बच्चा उसमें से निकल पड़ा।

आगे बढ़े दो दिन के बच्चे चार दिन के बच्चे दस दिन के बच्चे।

फिर देखा मुर्गियाँ अलग मुर्गे अलग।

मुर्गियों के घर हम गए तो वे इतने सारे आदमियों को एक साथ आया देखकर तितर-बितर भागीं सिर पर पैर रखकर और घुस चलीं अपने-अपने दड़बों में।

मुर्गों के यहाँ पहुँचे, तो वे बोले 'हूँ आप आए हैं। वे तत्काल अलग अलग अपने गोल बना कर मोर्चों पर जम गए। चोंचें उठीं कलगियाँ हिलीं। मुर्ग नेता ने बांग दी—'खबरदार! दलों के नायक और जनता ने फौरन नारे को दोहराया— हम सावधान हैं।

मन में तरह-तरह के भाव उठे लेकिन इन सबमें बिहारी का यह दोहा ऊपर तैर आया

नितप्रति पूनों ही रहत
आनन ओप उजास।

किसी चन्द्रमुखी को देख कर कवि को सूझा था कि इसके घर में तो हमेशा पूर्णमासी ही रहती होगी।

मैंने हीफ़ा से पूछा "इस जगह तो रात होने का कोई सवाल ही नहीं उठता ?'

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें विस्मय से भर आईं। पूछा 'क्यों ?'

"अरे, यही कि मुर्गे बोलते रहते होंगे, और रात भागती रहती होगी।

यह सुनकर उसके नयनों से हर्ष के फूल झर उठे।

मैंने कहा गजब है हीफ़ा तुम्हारे मिस्र में। हिन्दुस्तान क्या चीन को भी मात कर दिया। सत्तर हजार अडे और उनसे निकलने वाले प्रतिदिन हजारों मुर्गी के बच्चे! बाप-रे-बाप! ठिकाना है कोई इस जनसंख्या का।

हीफ़ा ने मेरे इस कथन पर कोई टिप्पणी नहीं की। कुछ अजब सी निगाहों से मुझे देखा और फिर थोडी देर बाद चेहरे पर काम काजी मुस्कराहट लाकर मुर्गीशाला का सम्मति रजिस्टर मेरे सामने कर दिया। बोली 'कुछ लिख दीजिए इस पर।

मैंने कहा लाइए, दस्तखत किए देता हूँ कि सनद रहे और वक्त पर काम आए।

तो बोली 'उहूँ। इस पर लिखिए कुछ वह भी गद्य में नहीं पद्य में।

मैं परेशानी में पड़ गया। मुर्गियों पर कविता!

लेकिन मेरे साथियों ने मुझे उत्साहित किया लिखो न यार! वो लार्ड्स पट से बचा डालो जब मैंस और गदहों पर लिखी है तो एक कवितांश मुर्गी पर भी सही।

मैंने टाला 'मेरी हिन्दी कविता को यहाँ समझे और पढ़ेगा कौन?

तो अंग्रेजी पत्र के एक विशिष्ट प्रतिनिधि ने आश्वासन दिया 'उसकी चिन्ता न करो। अनुवाद मैं कर दूँगा।

और मैंने मिस्र की भूमि पर पहली बार कविता की दो पंक्तियाँ उस रजिस्टर पर लिखीं

सत्य कहता हूँ नहीं यह भ्रान्ति है।
मिस्र का मुर्ग़ा भी करता क्रान्ति है।

७

नील नहीं तो मिस्र नहीं

नील नदी का रंग यद्यपि हमारी पुण्यतोया यमुना की भाँति विनम्र आकाश जैसा है पर मिस्र में नील का महत्व वैसा ही है जैसे हमारे यहाँ गंगा का।

लेकिन रुकिए, आप कहीं गलत न समझ जाएँ। समूचे मिस्र में न तो नील नदी के किनारे तीर्थ या देवालय हैं न पंडे और पुजारी जो यात्रियों को नहाने से पूर्व अपना धार्मिक कर वसूल करते हैं न नील माता की वहाँ आरती होती है न उसके जल को लोग शीशियों से लेकर पीपों तक भर भर ले जाते हैं और न उस पर पुष्प चढ़ते हैं न दूध की धारा और रात को दीपक।

फिर भी नील पवित्र है। केवल पवित्र ही नहीं परम पवित्र है। वह मिस्र के निवासियों को मर कर नहीं जीते जी स्वर्ग प्रदान करती है। मिस्र के सैकड़ों मील फैले उस मरु प्रदेश में यदि नील न होती तो मनुष्य का नाम न होता। नील उन्हें जल ही नहीं अन्न भी देती है सुख भी देती है सन्तोष भी प्रदान करती है। नील से बड़ा दाता मिस्र के लिए और कौन है? जहाँ-जहाँ नील है वहाँ-वहाँ जीवन है, वहाँ-वहाँ यौवन है। जहाँ नील नहीं है वहाँ सूखा है बालू है बालू के बवंडर हैं। जब मैं मिस्र में था तो नील की महिमा मैंने अपनी आँखों से देखी और सोचा कि इस महानदी की महिमा को पद्यबद्ध करूँ। लिखूँ 'हे अनन्त जलसंचारिणी हे चपल वारि तरंगे हे नीलाम्बर धारिणी, मैं तेरे रूप और यौवन पर गुण और और वैभव पर मुग्ध हूँ। मुझे इससे क्या लेना कि तू किस शैला धिराज की तनया है। मुझे इससे भी कोई सरोकार नहीं कि तू किस

धीर-गंभीर महासागर से वर की खोज में घर से निकल पड़ी है। तू किस जाति की है तेरा खुद का इतिहास क्या है ? मैं इस चक्कर में भी नहीं पड़ूँगा। तू मरुस्थापित की तपन को शमन करती है, तेरे स्नेह सीकरों से मनु के बेटों की तन-मन की प्यास तृप्त होती है तू नेत्रों की शीतलता है हृदय की संजीवनी है कर्म की प्रेरक है। तूने बार-बार मेरे नयनों को अपनी ओर खींचा है। तू मेरे मन में भाड़ी होकर सदा सदा के लिए बस गई है। हे परदेसिन ! मैं तुझ पर रीझ गया हूँ। वैसे ही जैसे तेरे तट पर रहने वाली ऊषा पर हमारे अनिरुद्ध कभी द्वापर में रीझ गए थे।

मुझे ज्ञात नहीं कि मिस्र के कवि अपनी नील की प्रशंसा किन शब्दों में करते हैं। लेकिन मिस्र के आम लोग अपनी महानदी की कद्र जिस तरह करते हैं वह मैं आँखों देख आया हूँ। पहले आपको मैं यह बताऊँ कि वे इस महत्व को रखने के लिए क्या-क्या नहीं करते।

मिस्र के लोग भले ही नील की आरती न उतारें, लेकिन वे हरगिज नील के किनारों को हमारे लोगों की तरह मलमूत्र से गन्दा नहीं करते। मैंने कोई गन्दा नाला भी नील में मिलते हुए नहीं देखा। रात के समय अपने घर का कूड़ा करकट भी उठाकर लोग नील में नहीं फेंक आते। नील पर फूल नहीं चढ़ाए जाते तो क्या मरे हुए जानवर या मुर्दे भी तो उसमें नहीं फेंके जाते। यह ठीक है कि नील के सुरम्य तट पर हमारे देश की तरह कलात्मक घाट, सभ्यता और संस्कृति के परिचायक गगनचुम्बी भवन और सत्य सनातन-धर्म की महान् महिमा का गुणगान करने वाले भव्य मन्दिर मिस्र में नहीं हैं न नील के किनारों की सन्ध्याकालीन निस्त ब्धता और उदासी को तोड़ने के लिए वहाँ मन्दिरों से घंटा-ध्वनि ही आती है और न प्रात कालीन सूर्य का प्रकाश नदी के स्वर्णशिखरों पर पड़कर जल में स्वर्ण लहरों की सृष्टि ही करता है। लेकिन नील के किनारे बहुत कुछ ऐसा है जो हमारे यहाँ नहीं है किन्तु होना चाहिए।

उदाहरण के लिए, काहिरा में मीलों तक दोनों ओर नील को

झील की तरह पक्के तटबन्धों से बाँधा गया है। नदी के किनारे किनारे मीलों तक सुरम्य वाटिकाएँ और सजे कटे पेड़ों की क्रमबद्ध पंक्तियाँ हैं। बम्बई के चौपाटी की तरह मीलों तक टहलने के लिए नदी के किनारे-किनारे प्लेटफ़ार्म हैं टहलने के लिए पार्क महकने के लिए फूल हैं और विहार करने के लिए नौकाएँ हैं। हमारे अयोध्या मथुरा माया, काशी, कांची अवन्तिका किसी भी नदी-पुर में ऐसा नहीं है।

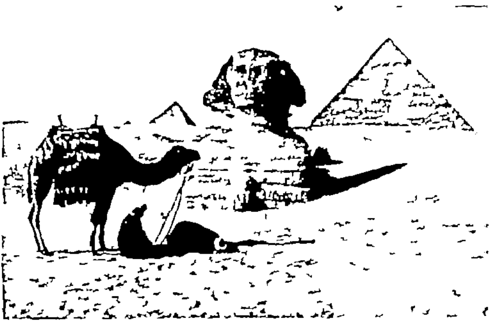
अपने देश में किसी भी नदी का क्या समुद्र का भी तट इतनी दूर तक इतनी व्यवस्था के साथ इतने नयनाभिराम रूप में सहेज-सँवार कर नहीं रखा गया। हम लोग प्राचीन पर गर्व तो बहुत करते हैं लेकिन वर्तमान को नहीं देखते भविष्य को नहीं बनाते। मिस्र-वासियों ने अपनी प्राचीन गरिमा को, जो नासक रूप में अबस्त्र रूप से आज भी प्रवाहमान है आज के अनुरूप बनाकर अपने भविष्य को उज्ज्वल किया है। इसीलिए वे सच्चे अर्थों में नीलपुत्र कहलाने के अधिकारी हैं। व उसके किनारे भाग छानकर सुलफे का दम लगाकर ममा-मैया नहीं चिल्लाते। वे बिना चिल्लाए नील का माता से भी अधिक आदर करते हैं।

मिस्र के इतिहास में एक समय ऐसा था जब वहाँ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को मिस्र की दुलहिन घोषित किया जाता था और एक दिन अरब लोग उसकी डोली धूमधाम से उठाते हुए उसे नील के तट पर ले जाते थे। प्रति वर्ष मिस्र की एक सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी देखते-देखते नील की बलि दे दी जाती थी। नील की लहरों में डूबती उतराती और पल पल मौत के मुँह में जाती उस सुन्दरी का करुण अन्त देखने के लिए लाखों लोग एकत्र होते थे, और विधाता की सृष्टि के सर्वोत्तम सुमन को जीवित जल-समाधि देकर यह विश्वास लेकर घर लौटते थे कि नील देवता अब प्रसन्न रहेगा और हम पर कोप नहीं करेगा।

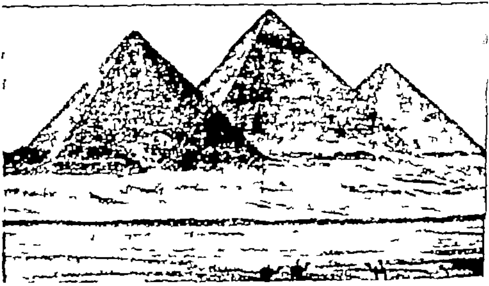
लेकिन अब वे दिन हवा हुए। आज नील कोप का नहीं दया का देवता हो गया है। उसे देखने को तो रोज जन-समुद्र उमड़ता रहता

है पर वह कभी नहीं उमड़ता। आज नील का दरिया अपनी पुत्रियों की बलि नहीं लेता, उन्हें अपने अंक में हिलराता-दुलराता है उनकी अठखेलियों में योग देता है, उन्हें प्रसन्न होते देखकर पुलकता है। आज मिस्र की सुन्दरियाँ नील के नाम से घबराती नहीं उसकी चर्चा मात्र से खिल उठती हैं। नील उनके मरण का नहीं नवजीवन का संदेश है। नील केवल सुन्दरियों के लिए ही नहीं, समूचे राष्ट्र के लिए नव जीवन का सन्देश। उनके लिए यह कहावत है 'यदि नील नहीं तो मिस्र नहीं।

यदि स्वेज मिस्र की आत्मा है जान है, तो नील उसका शरीर। मिस्र के लोग अपने इस शरीर की रक्षा करने के लिए, इसे पुष्ट बनाने के लिए हर कुर्बानी देने को तैयार हैं। पिछले शासन में नील का पूरा पूरा लाभ नहीं उठाया गया। भारत की तरह न नील से काफ़ी नहरें निकली हैं न बाँध बने हैं और न उसके जल से अभी पर्याप्त बिजली उपलब्ध की जाती है। लेकिन अब नये मिस्र के लोग आस्वान बाँध बाँधकर इस कमी को पूरा करना चाहते हैं। नील नदी का यह बाँध आज मिस्रियों की समस्या है। लेकिन स्वेज समस्या को अपने अदम्य साहस से सुलझा लेने वाले हमारे मित्र नील-समस्या को भी आसानी स शान्ति के साथ सुलझा लेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। और उस दिन की इन्तजार करनी चाहिए, जब नील एक नहीं अनेक धाराओं में नहरों रजवाहों और घुमावों के रूप में बहकर मिस्र की धरती की कण-कण सिकता को अपनी जीवनधाराओं से परिप्लावित और नील से निस्सृत विद्युतशक्ति मिस्र के गाँव-गाँव को आलोकित कर देगी। उससे बस और कारखाने चल पड़ेंगे और नील को फिर से अपना पुराना लोहित नाम प्राप्त हो जायेगा।



स्फिंक्स—काहिरा के निकट नरसिंह की एक विशालकाय प्रतिमा



संसार के सातवें आश्चर्य—पिरामिड

८

संसार का सातवाँ आश्चर्य : पिरामिड

मन की सभी किसकी पूरी हुई हैं? मेरी इच्छाएँ भी अब तक अपूर्ण हैं। उनमें से बहुतों का मलाल मुझे नहीं है। परन्तु एक इच्छा ऐसी अवश्य है कि जिसके पूरी न होने की कसक मुझे उम्र भर सालती रहेगी। ऐसी इच्छाओं को कहने में कुछ हिचक भी लगती है, और ऐसी इच्छाएँ हैं भी बड़ी छोटी-सी, लेकिन उन्हें पूरा करने में बड़े अभ्यास और साहस की आवश्यकता है।

गाँव में पैदा होकर मेरी इच्छा शहर में पढ़ने की थी। शहर में पढ़कर मेरी इच्छा अपनी कमिश्नरी में धंधा तलाश करने की थी। कमिश्नरी में बसकर मेरा विचार राजधानी पहुँचने का हुआ। राजधानी में पहुँचकर मैंने चाहा कि मैं पत्रकार बन जाऊँ। पत्रकार बनने पर मेरी तमन्ना हुई कि मुझे भी विदेश भ्रमण करने का अवसर मिले। विदेश यात्रा की सुविधा होने पर मैंने चाहा कि मैं पहले मिस्र चलूँ। मिस्र पहुँचने पर मेरी पहली ख्वाहिश थी कि मैं पिरामिड देखूँ। पिरामिड देखने पर मुझे जो इच्छा हुई वह वही है जो पूरी नहीं हो सकी।

आप जानते होंगे कि क्या हजारों वर्ष से अविचल खड़े हुए सैकड़ों फुट ऊँचे महाकाय पिरामिड को देखकर मेरे मन में भी कुछ वैसी ही इच्छा हो गई, जैसी कि ताजमहल को देखकर एक अमरीकन रमणी की हो आई थी।

मैंने हरगिज भी उस अमरीकन रमणी की तरह यह एक क्षण के लिए नहीं सोचा कि अगर मेरी यादगार में भी कोई ऐसा महान् स्मारक बना दे तो मैं अभी अपनी जान देने को तैयार हूँ। न मेरी

तमन्ना यह थी कि मैं किराये की अरबी पोशाक पहन कर ऊँट पर चढ़ कर दोस्तों को दिखाने के लिए पिरामिड के नीचे एक बढ़िया सी फोटो खिंचवा लूं जैसा कि वहाँ पहुँच कर आम तौर से लोग किया करते हैं।

मेरी इच्छा तो सिर्फ यह थी कि जैसे मेरी आँखों के सामने मिस्र के नौनिहाल पिरामिडों के पत्थरों को पकड़-पकड़ कर बंदरों की तरह छलांग लगाते सैकड़ों फुट ऊँचे दनादन चढ़ते चले जा रहे हैं उनमें मैं भी अपने आपको शामिल कर लूं। मैंने अपनी यह इच्छा उस मिस्री अधिकारी से प्रकट भी कर दी जो हमारी सुविधा के लिए वहाँ की सरकार की ओर से हमारे दल के साथ था। लेकिन उसने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मेरी यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। क्योंकि हम लोग अतिथि थे और हमारे जीवन की सुरक्षा का दायित्व वहाँ की सरकार के ऊपर था।

माना कि उस भयंकर मरु प्रदेश में सैकड़ों मील दूर से इन पत्थरों को तो-काटकर लाना बड़ा कठिन कार्य था। माना कि उससे भी कठिन कार्य इन पत्थरों को बिना मशीनों की सहायता के काट-तराशकर सैकड़ों फुट ऊँचे स्तूपों में चुनना था। लेकिन इन पहाड़ जैसे पिरामिडों पर बिना किसी सहारे और रास्ते के छलांग मारते हुए नंगे पैर, बिना किसी सहारे के सीधे चढ़ जाना वास्तव में सबसे अधिक कठिन काम था।

इन युवकों को यूं पिरामिडों पर चढ़ते देख कर मुझे उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि कठिनाई को खड़ा करने वाले ही कठिनाई को पार कर सकते हैं। अगर मिस्रियों के पूर्वजों ने यह पहाड़ जैसे पिरामिड खड़े कर दिखाये थे तो आज के जमाने में उनके बच्चे उन पर हँसते हँसते छलांग मार कर चढ़ भी सकते हैं।

मेरी जीवन में दिलचस्पी है मौत में नहीं। मेरी शिव में भक्ति है शव में नहीं। लेकिन मिस्र की यह जो पिरामिड संस्कृति है उसमें मैंने शव की महत्ता के प्रथम बार दर्शन किये। अपने देश के पुराणों में मैंने लोगों के सदेह स्वर्ग जाने की कथाएँ पढ़ी हैं। कुछ लोगों के सदेह

अमर होने की बात भी हिन्दूशास्त्रों में कही गई है। लेकिन मरने के बाद न जाने कब आत्मा उसी शरीर में फिर वापस आ जाए, यह बात पहली बार मिस्र में ही सुनी। मिस्र के शासक फराऊन का यह विश्वास था कि मरकर वे कभी भी अपनी मृत देह में वापस आ सकते हैं। इसलिए उनके शव को बड़ी हिफाजत के साथ पहाड़ों जैसे पिरामिडों के भीतर बड़ी सुरक्षा के साथ रखा जाता था। न जाने वह कब जीवित हो उठें और उन्हें कब किस चीज की आवश्यकता हो जाए, इसलिए उनके शव के साथ ही खाने-पीने की चीजें दैनिक व्यवहार में आने वाले पदार्थ, आराम और शौक के समस्त साधन ही नहीं, उनके गुलाम और पालतू जानवर भी मारकर दफना दिये जाते थे।

पिरामिड बाहर से देखने पर बड़े कठोर, अनगढ़ और लगभग असुन्दर से दिखाई पड़ते हैं। उन्हें बाहर से देखने पर आश्चर्य में इनकी गणना कैसे की जाती है? क्योंकि न इनमें ताजमहल जैसी नक्काशी है और न कुतुब मीनार जैसी सुघड़ी है, और न अजंता और अलोरा की तरह आत्मा का सौन्दर्य इन्हें देख कर आँखों के सामने नाच उठता है। लेकिन पिरामिडों के अंदर से मानव-सभ्यता और इतिहास के धर्म और विश्वास के, कला और विलास के जो नमूने प्राप्त हुए हैं वे संसार के इतिहास में बे-जोड़ हैं।

मैं आपको यह बताने का कष्ट नहीं करूंगा कि अब तक कुल कितने पिरामिडों का पता लगाया जा चुका है। मैं आपका समय यह बताकर भी नष्ट नहीं करना चाहता कि कौन पिरामिड कितना ऊँचा है? कितना चौड़ा है? उसके अन्दर कितने कमरे हैं? वह कितने साल पुराना है? उसका पत्थर कहाँ से और किस रास्ते से आया था? उसमें किसका शव सोया हुआ है? मैं आपको यह भी नहीं बताना चाहता कि जिस पत्थर के तावूत में फराऊनों का शव रखा जाता था वह पत्थर एक ही चट्टान का और कितना हलका होता था। और यह भी कि पत्थर के तावूत के नीचे संगमरमर का उसके बाद पीतल का और उसके बाद, अन्त में, सोने का तावूत हुआ करता था। और यह भी

कि उस सोने के ताबूत में फराऊनों का शव किस मसाले से लपेट कर किस विधि से किस यत्न से यूं सहेज कर रखा जाता था कि हज़ारों वर्ष बाद भाज भी उनकी समझ में सिकन नहीं पड़ी है।

मैं तो आपको सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि एक युग था, जब भारत की तरह ही मिस्र के लोग भी सूर्य की उपासना किया करते थे। यह भी बताना चाहता हूँ कि फराऊन शासक सूर्यवंशी थे। इसीलिए वे अमर थे और इसीलिए उनके शव को इतनी सुरक्षा से रखा जाता था। *पिरामिडों के अन्दर सूर्य देव की प्रतिमा का पाया जाना इस कथन* की पुष्टि करता है। हिन्दुओं के लिए एक बात और भी बताना चाहता हूँ कि ताबूत में फराऊनों के सिर की तरफ सोने के पत्र पर एक गाय का चित्र अंकित होता था। यह गाय विदेशी तरह की नहीं शुद्ध भारतीय नस्ल जैसी होती थी। इसके लम्बे कान और लम्बी-लम्बी पूंछ और नदी में से इसका गुज़रना ऐसा मालूम पड़ता था जैसे वैतरणी पार कर रही हो। गो-मण्डित इस ताबूत को मैंने काहिरा के अजायबघर में अपनी आँखों से देखा है और देखा है गनेरा के पिरामिडों के पास अबुलहोल की विशालकाय नरसिंह मूर्ति को। इस मूर्ति का धड़ सिंह का है और चेहरा मनुष्य का। मुझे इसे देखकर भारतीय पुराणों में वर्णित नरसिंह अवतार की याद आ गई जिसमें चेहरा सिंह का और धड़ मनुष्य का धारण करके भगवान ने एक राक्षस का संहार किया था। क्या अबुल-होल और नरसिंह अवतार में कोई साम्य है—यह मैं सोच ही रहा था कि मुझे अबुलहोल की विशालकाय मूर्ति में तीन तत्वों के दर्शन हुए। मैंने देखा कि उसके धड़ में सिंह जैसी शक्ति है उसके मुख पर रमणी जैसी मुस्कान है, और उसके विशाल मस्तिष्क में उसके बनाने वाले सुघड़ कलाकार ने ज्ञानगरिमा कूट-कूट कर भर दी है। अब यह जानकर कि उसकी पूंछ कितने गज लम्बी है और उसकी नाक कितने फुट की है, और इस नाक को क्रूर नेपोलियन ने क्यों तोड़ दिया था और मिस्र के कारीगर उसे अब तक क्यों नहीं बना पा रहे हैं—आप क्या लेंगे। आप सिर्फ यह जानिये कि जीवन के लिए शरीर में दृढ़ता सुघड़

पर मुस्कान और मस्तिष्क में सन्तुलन की आवश्यकता है। अबुलहोल की प्रतिमा हमको यही संदेश देती है।

मैं अभी नरसिंह और सिंह नर के बारे में सोच ही रहा था तब मेरे गाइडों ने मुझे एक और अनूठी चीज दिखाई। यह एक हजार वर्ष पुराना मंदिर था। इस मंदिर में साधकों की साधना के लिये अलग-अलग स्थान बने हुए थे और ऐसी जगह भी थी जहाँ कभी कोई मूर्ति रही होगी। उस मंदिर का गर्भ गृह उसके खम्भे उसकी छतें उसके द्वार मुझे भारतीय परम्परा के निकट प्रतीत हुए।

मैं सोचने लगा कि यह पिरामिडों में सोए सूर्य वंशी राजा, यह नरसिंह की महाकाय मूर्ति और उसके पास ही बना हुआ यह देव मंदिर अवश्य ही कोई ऐसी कहानी कह रहा है जिसे आज जमाना भूल चुका है और जिसके विषय में इतिहास भी अभी तक मौन है। लेकिन जमाना भले ही भूले एक भारतीय को यहाँ आकर बहुतसी बातें याद आ जाती हैं। इतिहास भले ही मौन रहे लेकिन समय और काल की सीमा से परे देखने वाला कवि कभी मौन नहीं रह सकता। वह पुकार कर कह रहा है कि मिस्र और भारत कभी एक थे एक हैं और एक ही होकर जरूर रहेंगे।

६

मिस्र की गंगा : स्वेज़

दुनिया के लोगों के लिए स्वेज का महत्व चाहे जो हो, मिस्रवासियों के लिए तो वह प्राणों से भी बढ़ कर है। वह स्वेज के लिए अपने प्राणों की ही नहीं यदि उससे भी बढ़कर उनके पास कोई चीज हो तो उसकी भी बाजी लगाने को तैयार हो सकते हैं, क्योंकि स्वेज उनके लिए न केवल अतीत के गौरव की स्मृति है न केवल वर्तमान की सुख समृद्धि की स्रोत है बल्कि वह उनके भविष्य की भी मधुरतम एवं मनोरम आशा है। जैसे सुयोग्य पुत्र को देखकर माता-पिता की छाती गर्व से फूल उठती है, या सुन्दर और समर्थ पति को प्राप्त कर पत्नी आत्म विभोर हो जाती है या कोई धनिक जैसे अपनी संचित सम्पदा को निरखकर निहाल होता रहता है वही दशा मिस्र के लोगों की स्वेज को देखकर या उसकी बातें करते हुए होती है। एक मिस्री अधिकारी के साथ जब मैं स्वेज के किनारे-किनारे उस दिन सफ़र कर रहा था तो उसने हाथ उठाकर बड़े गर्व से इंगित करते हुए मुझसे कहा था "देखते हैं आप उस पार जो हजारों लोग एकत्र हैं वह क्या कर रहे हैं? ये उन्हीं महान् अरब पूर्वजों की सन्तान हैं जिन्होंने हजारों वर्ष पूर्व धरती की छाती पर पिरामिड खड़ करके संसार को आश्चर्यचकित कर दिया था आज उन्हीं के वंशज एक बार फिर दूसरा पुरुषार्थ करने को तत्पर हैं।

मैंने पूछा वह क्या?

तो उस अधिकारी ने मुझे बड़ ही राष्ट्रीय गर्व से संजीदा तर्ज में बताया कि ये लोग स्वेज को और अधिक चौड़ा करने में तत्पर हैं।

हम लोग चाहते हैं स्वेज इतनी चौड़ी हो जाए कि इसमें एक साथ कम-से-कम दो जहाज अवश्य आ जा सकें और उन्हें दूसरे को रास्ता देने के लिए बीच-बीच में लंगर न डालने पड़ें।

स्वेज को देखने पर यह नहीं लगता कि यह कोई नहर है। यह खासी नदी दिखाई देती है। उसका पाट ४२० फुट चौड़ा है और उसकी लम्बाई भी कोई कम नहीं, १०२ मील है। लेकिन नदी भी उसे कैसे कहा जाए। नदी बहती है। पहाड़ से निकल कर झील या समुद्र में गिरती है। लेकिन स्वेज बहती नहीं समुद्र की तरह स्थिर है। वह सागर से निकल कर सागर में मिलती है। वह मानव पुरुषार्थ की वैसी ही मिसाल है जैसी रामायण काल में हमारे भारत में घटित हुई थी। राजा राम के साथ भारतीयों ने मिलकर कभी समुद्र पाटा था। उसी प्रकार मिस्रियों ने आज से तीन हजार वर्ष पूर्व समुद्र से समुद्र को मिलाने वाले इस महान् कार्य की आधारशिला रखी थी।

स्वेज के निर्माण पर अपना दावा करने वाले और उस पर अभिमान जताने वाले आज कई यूरोपियन राष्ट्र बढ़-चढ़कर बातें करते हैं। इंग्लैंड की तिजोरियों को यह गर्व है कि स्वेज के निर्माण का श्रेय उनको है। फ्रांस का कहना है कि स्वेज उसके अभियान्त्रिकी की करामात का नमूना है। इटली और पुर्तगाल भी इसी प्रकार के दावेदार हैं। लेकिन मिस्र के युग-युग प्राचीन इतिहास में आज से केवल पौन सदी पूर्व स्वेज कम्पनी का निर्माण कल की-सी घटना मालूम पड़ती है।

सचाई यह है कि रोम सागर और लाल सागर को जल-मार्ग से मिलाने का विचार सबसे पहले मिस्रियों के कल्पनालोक में ही उत्पन्न हुआ था और इसका प्रथम स्वप्न देखने वाले थे फराऊन राम सैस। उसके बाद एक हजार वर्ष तक मिस्र के बहादुर लोग इस महान् कल्पना का सफल सम्पन्न प्रयास के लिए जोड़-तोड़ और विचार-विमर्श करते रहे। आखिर एक दिन वह आया कि जब इस नहर की नींव धूम धाम से रख दी गई और मिस्र के मजदूर लोगों ने १८ मील की इस शानदार नहर का निर्माण कर डाला। प्रसार व तन्त्र कौशल में यह एक

६

मिस्र की गंगा स्वेज़

दुनिया के लोगों के लिए स्वेज का महत्व चाहे जो हो मिस्रवासियों के लिए तो वह प्राणों से भी बढ़ कर है। वह स्वेज के लिए अपने प्राणों की ही नहीं यदि उससे भी बढ़कर उनके पास कोई चीज हो तो उसकी भी बाजी लगाने को तैयार हो सकते हैं क्योंकि स्वेज उनके लिए न केवल अतीत के गौरव की स्मृति है न केवल वर्तमान की सुख समृद्धि की खान है बल्कि वह उनके भविष्य की भी मधुरतम एवं मनोरम आशा है। जैसे सुयोग्य पुत्र को देखकर माता-पिता की छाती गर्व से फूल उठती है या सुन्दर और समर्थ पति को प्राप्त कर पत्नी भाग्य विभोर हो जाती है या कोई धनिक जैसे अपनी संचित सम्पदा को निरखकर निहाल होता रहता है वही दशा मिस्र के लोगों की स्वेज को देखकर या उसकी बातें करते हुए होती है। एक मिस्री अधिकारी के साथ जब मैं स्वेज के किनारे-किनारे उस दिन सफ़र कर रहा था तो उसने हाथ उठाकर बड़े गर्व से इंगित करते हुए मुझसे कहा था "देखते हैं आप उस पार जो हजारों लोग एकत्र हैं वह क्या कर रहे हैं? ये उन्हीं महान् अरब पूर्वजों की सन्तान हैं जिन्होंने हजारों वर्ष पूर्व धरती की छाती पर पिरामिड खड़े करके संसार को आश्चर्यचकित कर दिया था आज उन्हीं के वंशज एक बार फिर दूसरा पुरुषार्थ करने को तत्पर हैं।"

मैंने पूछा "वह क्या?"

तो उस अधिकारी ने मुझे बड़े ही राष्ट्रीय गर्व से सजीदा ढंग में बताया कि ये लोग स्वेज को और अधिक चौड़ा करने में तत्पर हैं।

हम लोग चाहते हैं स्वेज इतनी चौड़ी हो जाए कि इसमें एक साथ कम-से-कम दो जहाज अगल-बगल आ जा सकें और उन्हें दूसरे को रास्ता देने के लिए बीच-बीच में लंगर न डालने पड़ें।

स्वेज को देखने पर यह नहीं लगता कि यह कोई नहर है। वह खासी नदी दिखाई देती है। उसका पाट ४२० फुट चौड़ा है और उसकी लम्बाई भी कोई कम नहीं, १०३ मील है। लेकिन नदी भी उसे कैसे कहा जाए। नदी बहती है। पहाड़ से निकल कर झील या समुद्र में गिरती है। लेकिन स्वेज बहती नहीं समुद्र की तरह स्थिर है। वह सागर से निकल कर सागर में मिलती है। वह मानव पुरुषार्थ की वैसी ही मिसाल है जैसी रामायण काल में हमारे भारत में घटित हुई थी। राजा राम के साथ भारतीयों ने मिलकर कभी समुद्र पाटा था। उसी प्रकार मिस्रियों ने आज से तीन हजार वर्ष पूर्व समुद्र से समुद्र को मिलाने वाले इस महान् कार्य की आधारशिला रखी थी।

स्वेज के निर्माण पर अपना दावा करने वाले और उस पर अभिमान जताने वाले आज कई यूरोपियन राष्ट्र बढ़-चढ़कर बातें करते हैं। इंग्लैंड की तिजोरियों को यह गर्व है कि स्वेज के निर्माण का श्रेय उनको है। फ्रांस का कहना है कि स्वेज उसके यन्त्रशास्त्रियों की करामात का नमूना है। इटली और पुर्तगाल भी इसी प्रकार के दावेदार हैं। लेकिन मिस्र के युग-युग प्राचीन इतिहास में आज से केवल पौन सदी पूर्व स्वेज कम्पनी का निर्माण कल की-सी घटना मालूम पड़ती है।

सचाई यह है कि रोम सागर और लाल सागर को जल-मार्ग से मिलाने का विचार सबसे पहले मिस्रियों के कल्पनालोक में ही उत्पन्न हुआ था और इसका प्रथम स्वप्न देखने वाले थे फराऊन राम सेस। उसके बाद एक हजार वर्ष तक मिस्र के बहादुर लोग इस महान् कल्पना को सहज सम्भव बनाने के लिए छानबीन और विचार-विमर्श करते रहे। आखिर एक दिन वह आया कि जब इस नहर की नींव धूम धाम से रख दी गई और मिस्र के मजबूत हाथों ने ६८ मील की इस शानदार नहर का निर्माण कर डाला। संसार के तन्त्र कौशल में यह एक

अभूतपूर्व घटना थी। लोगों ने देखा धरती के ऊपर पिरामिड बनाकर ऊँचे जाने वाले लोग धरती के नीचे नहर खोद कर काफ़ी गहरे भी जा सकते हैं।

सदियों की गर्द और काल के झंझावात का प्रभाव इस नहर पर भी पड़ा। फराऊनों के पतन के साथ-साथ यह नहर भी गर्द गुबार से पट पट गई। इसके किनारे टूट-फूट गए। ऐसा लगने लगा कि मानो धरती पर से इसका *नामोनिशान ही मिट जाएगा। लेकिन मिस्र में* इस्लाम के जागरण के साथ-साथ इस नहर के इतिहास ने भी फिर अंगड़ाई ली। अरब गवर्नर अमर इब्न-अल आस ने फिर इसके रूप को निखारा और पयस्विनी फिर से मिस्र-मेदिनी का मनोरंजन करने लगी।

यूरोपीय लोगों में सबसे पहले इसका ध्यान नेपोलियन को आया। उसका विचार था कि लाल सागर और रोम सागर को जल मार्ग से मिला दिया जाए ताकि उसकी युद्धदर्पी सेनाएँ पूर्व के देशों को भी सहज ही पदाक्रान्त कर सकें। लेकिन यह आसान नहीं था। मिस्र की भूमि में किसी विदेशी के द्वारा ऐसा प्रयत्न तो और भी असंभव था। पुरानी नहर पर सदियों की परत इस तरह जम गई थी कि उसका जीवन कण कण करके सोख लिया गया था। अब नहर बाकी नहीं बची थी जहाँ तहाँ उसके चिह्न ही रह गए थे। नेपोलियन के मन की मन में रह गई।

नेपोलियन का स्वप्न बाद में उसी के एक देशवासी डीलास्से ने पूरा किया। उसने मिस्र के खदीव इस्माइल से स्वेज का क्षेत्र निन्यानबे वर्ष के पट्टे पर लिया स्वेज कम्पनी बनी यूरोप के विभिन्न देशों की पूँजी इसमें लगी। और पौन सदी पूर्व वर्तमान नहर इस रूप में प्रकट हुई।

इस नहर के निर्माण में पूरे ग्यारह वर्ष लग गए। तनिक उस महान् परिश्रम की कल्पना कीजिए—उसमें न जाने कितने लाख हाथ लगे होंगे क्योंकि सरकारी आँकड़े बताते हैं कि इसके निर्माण में बत्तीस हजार मिस्रियों को तो अपने जीवन ही की बलि देनी पड़

गई थी।

यह नहर भूमध्यसागर से लालसागर को मिलाती है। इसके बन जाने से एशिया से यूरोप की यात्रा करने वालों का दो हज़ार मील का चक्कर बच जाता है और तीन सप्ताह का समय कम लगता है। इससे प्रति दिन सत्तर लाख रुपये की आमदनी होती है। मस्साह से लेकर स्वेज़ गवर्नर तक हज़ारों लोगों को रोज़ी इससे चलती है।

स्वेज़ का संसार के लिए आर्थिक ही नहीं राजनैतिक महत्व भी है। इसके एक किनारे पर एशिया दूसरे पर अफ्रीका तीसरे पर यूरोप और चौथे पर भारत आने जाने का सुगम मार्ग। इसीलिए केवल धन की खातिर ही नहीं राजनैतिक कारणों से भी फ्रांस और ब्रिटेन इस पर कब्ज़ा बनाए रखना चाहते थे। लेकिन स्वेज़ जहाँ अरबों के लिए श्री-समृद्धि का सन्देश लेकर आई थी वहाँ उसने अरब जाति को राष्ट्रीयता का भी मन्त्र प्रदान किया। स्वेज़ के किनारे पर बसे हुए पोर्ट सईद और इस्माइलिया अरब राष्ट्रीयता के ऐसे जागरण केन्द्र बन गए कि जिनके बार-बार के विद्रोह ने आखिर विदेशियों के पैर उखाड़ ही दिए। आज की पीढ़ी फ्रांस और इंग्लैंड के मिस्र पर बर्बर हमले को कभी नहीं भूल सकती। भयंकर बमबारी ने पोर्ट सईद एकदम नष्ट भ्रष्ट कर डाला था। लेकिन मैंने अपनी आँखों से पोर्ट सईद को देखा तो मुझे एक क्षण को भी यह नहीं लगा कि यहाँ कभी किसी विदेशी बमबाज़ का हमला भी हुआ था। विनाश की जगह सर्वत्र निर्माण के नये अंकुर लहरा रहे थे। राष्ट्रपति नासिर ने न केवल स्वेज़ से विदेशियों को ही खदेड़ दिया बल्कि वह जो बरबादी बिखेर गए थे उसे चन्द ही दिनों में चौगुना आबाद करके दिखा दिया।

लोगों का यह खयाल था कि विदेशियों के चले जाने से स्वेज़ फिर झट-पट जाएगी मिस्र के लोग उसे जहाज़रानी के योग्य न रख सकेंगे उसकी व्यवस्था बिगड़ जाएगी और अरबों को अपने किए पर पछताना पड़ेगा। लेकिन दुनिया ने देखा कि वैसा कुछ नहीं हुआ। लोगों ने देखा कि स्वेज़ चालू है। उसके प्रबन्ध में पहले से अधिक व्यवस्था है।

उसमें गुजरने वालों को पहले से अधिक सुविधा है और स्वेज अपने देशवासियों को पहले से कहीं अधिक दौलत भी देने लगी है।

सन्ध्या का समय हो सुहावना-सा मौसम हो आपके साथ अच्छी मित्र-मण्डली हो पिकनिक का आलम हो तो स्वेज के किनारे सैर करने या खड़े होकर निहारने का आनन्द लेने ही लायक होता है। स्वेज में से धीमे-धीमे गुजरते हुए जहाज ऐसे लगते हैं जैसे कोई नववधू दीवाली के दिन थाल में असंख्य दीपक बाल कर किसी मिलन महोत्सव को चल पड़ी हो।

१०

ये नील कन्याएं

जब मैं हिन्दुस्तान से काहिरा को रवाना हुआ तो अनेक मित्र गोष्ठियों में मुझे कई प्रकार की सलाहें दी गईं। कहा गया तुम ठहरे कवि, रस के नामी सौन्दर्य के उपासक गुण पर रीझने वाले। देखना अरब देशों को जा तो रहे हो लेकिन वहाँ की हूरों से बचना गिलमों से सावधान रहना परियों में अपने पर न फँसाना। यह मजाक मुझसे पुरुषों ने ही नहीं, कुछ मेरी शिक्षित सखियों ने भी किये।

मुझे बताया गया कि काहिरा में रात्रि बलबों में बड़ी रौनक रहती है। दमिश्क में औरतों के बड़े-बड़े चकले हैं। पोर्ट सईद में पापाचार की पराकाष्ठा है, बहुत से जाल हैं, तरह-तरह के फरेब हैं, भाँति भाँति के लोग हैं। खबरदार! पाँव संभाल के चलना।

कुछ और अनुभवी किस्म के लोगों ने कहा था कि दिल्ली से पश्चिम तुर्की तक जैसे-जैसे बढ़ते जाइये नारी-सौन्दर्य दुगुना चौगुना मिलता चलेगा।

किताबों में पढ़ा था और बुजुर्गों से सुना था कि अरब लोग बड़े बहादुर किन्तु साथ ही बड़े भोगी किस्म के जीव होते हैं। इन सब बातों ने दिमाग पर अरब राष्ट्रों के सम्बन्ध में कुछ अजब किस्म की तस्वीर अंकित कर दी थी। इन बातों की यात्रा के प्रथम दौर में कुछ पुष्टि भी मिली। मैंने देखा कि कुएत के एक भोज में औरतें मदिरा पान में पुरुषों से पीछे न थीं। उनके कहकहे और मजाक भी कुछ कमजोर नहीं थे। काहिरा के एक होटल के मदिरा-कक्ष में मैंने नारियों को परपुरुषों और पुरुषों को परनारियों के साथ उन्मत्त होकर गाते-पीते और नाचते

देखा था। काहिरा और पोर्ट सईद में वेश्याओं और आवारा औरतों के तन का सौदा करने वाले लोग और दलाल मुझे जहाँ तहाँ पूछताछ करते दिखायी दिये।

मैंने देखा कि रूप में शृंगार सज्जा में तौर तरीके में और खान पान में अरब नारी किसी भी प्रकार पैरिस लन्दन या वाशिंगटन की नारी से उन्नीस नहीं है। उसने पश्चिमी लिबास ही नहीं पहना उसकी आत्मा में भी जैसे पश्चिम की नारी उतर आई हो।

लेकिन अगर कोई मेरे इस विवरण से और इस सिफली काम लोलुप भांत वातावरण से या लोगों की सुनी सुनाई बात के आधार पर होटलवासी दुनिया के एकांगी जीवन से अरब नारी की तस्वीर खींचना चाहे तो वह एकदम गलत और पूरी तरह उलटी होगी। नई दिल्ली से लेकर लन्दन तक दुनिया के किस सभ्य देश के बड़े नगर में ऐसे दृश्य नहीं मिलते? यदि उन्हीं के आधार पर हम किसी देश की नारी के बारे में अपनी धारणा बना लें तो वह वैसी ही गलत होगी जैसी भारत के बारे में मिस मेयो की थी।

अरब नारी आज संसार के किसी भी सभ्य देश की नारी से पीछे नहीं। दफ्तरों में टाइप टेलीफोन पूछताछ और स्वागत-सत्कार का काम करने वाली महिलाएँ तो वहाँ हैं ही लेकिन महत्वपूर्ण सरकारी महकमों की अफसर, वकील प्रोफेसर पत्रकार और विदेश विभाग में भी वहाँ महिलाओं की संख्या काफी मात्रा में पाई जाती है। हमारे यहाँ कारखानों मिलों और फैक्टरियों में हिन्दुस्तानी नारी का प्रवेश नगण्य-सा ही है। अरब देशों में खासतौर से मिस्र में, ऐसी बात नहीं। वहाँ काफी संख्या में महिलाएँ कल कारखानों में पुरुषों का हाथ बटाती हैं।

जरा कल्पना कीजिए, आज से १४०० वर्ष पूर्व उस अरब नारी की जब वह भी लूट के सामान की तरह एक अवध मर थी। उसका काम पशुओं की तरह मनुष्य के संकेतों पर चलना और उसकी इच्छा पूर्ति का साधन बनना था। वह बाजारों में बेची जाती थी रेवड़ की

तरह विजेता उसे अपने साथ खदेड़ ले जाते थे। एक एक आदमी के हरम में अनगिनत औरतें कबूतरियों की तरह दड़बों में भरी रहती थीं। न उसे किसी प्रकार के सामाजिक अधिकार प्राप्त थे न कोई शिक्षा संस्कार ही थे। लेकिन आज देखिए कि कोई उसकी इच्छा के विपरीत उसे ब्याह नहीं सकता, उसे तलाक का अधिकार प्राप्त है वह मनुष्य की सम्पत्ति नहीं उसकी सम्पत्ति की अधिकारिणी है। फैक्टरियों में काम करने के लिए अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं और उसकी राय न केवल घर गृहस्थी के मामलों में बल्कि समाज और राजनीति के मामलों में भी भारी महत्त्व रखती है। मैंने मिस्र की नारी शिक्षा के आँकड़े मालूम किये तो पता चला कि वहाँ प्रारंभिक शिक्षा तो सबके लिए अनिवार्य है ही, लेकिन जिन्हें पूरी तरह शिक्षित कहा जा सकता है ऐसी नारियों की संख्या मिस्र में दस लाख है। दो करोड़ की जनसंख्या वाले किसी एशियाई देश में दस लाख नारियों का शिक्षित होना कोई कम बात नहीं।

अरब देशों के नारी-जागरण में एक घटना का बड़ा सांकेतिक हाथ है। बात सन् १९३० की है। श्रीमती शरावी नाम की एक महिला एक कान्फ्रेंस में भाग लेने रोम गई थीं। वहाँ उन्होंने संसार की नारियों को देखा, उनके विचार सुने। विश्व के नारी-जागरण की एक झलक उन्हें उस कान्फ्रेंस में मिली। श्रीमती शरावी एक निश्चय के साथ स्वदेश लौटीं। जब वह स्वदेश के बन्दरगाह पर पहुँचीं तो बहुत से स्त्री-पुरुष उनके स्वागत को उपस्थित थे। जहाज की सीढ़ियों से उत रते-उतरते उन्होंने एक ऐतिहासिक कार्य किया। वह यह कि अपना बुरका उतार कर सबके देखते-देखते समुद्र में फेंक दिया। उस दिन से जो मिस्र से बुरका गया वह आज तक नहीं लौटा। अब भी दूर देहातों में और शहरों में कुछ पुरानी उम्र की महिलाएँ बुरके से लिपटी जहाँ तहाँ मिल जाती हैं लेकिन मिस्र की हर लड़की और समस्त नवयुव तियाँ इस रेशमी परदे से बाहर आ गईं। लज्जा के इस बाहरी आवरण के उतरने से उनके शील का ह्रास हो गया हो, ऐसा मैं नहीं मानता।

मैं कई गृहस्थ महिलाओं से मिला। एक दो शिक्षित युवतियों के सम्पर्क में भी आया। मैंने देखा कि भारत ही की तरह उनमें भी शील संकोच और मर्यादा के भाव विद्यमान हैं।

मिस्र के मुकाबिले सीरिया और दूसरे देशों की नारियों में बुरका और पुरातन जड़ताओं के चिह्न अभी ज्यादा पाये जाते हैं। दमिश्क की एक घटना याद आती है। हम लोग वहाँ बाजार में कुछ सामान खरीद रहे थे। हमारे साथ एक भारतीय महिला भी थीं। जब हम लोग बाजार से गुजर रहे थे तो हमारे साथ की भारतीय महिला को पीछे से आती एक बुरके वाली महिला ने बड़े जोर का मुक्का मारा। मुक्का मारकर वह ठहरी नहीं सीधी चली गई। हम लोग हैरान थे कि यह क्या बात है। बाद में मालूम पड़ा कि सिर खोले हुए इस भार तीय नारी को वह पुराने खयालों की अरब नारी सह न सकी और अपने क्रोध का प्रदर्शन उसने मुक्के के रूप में कर ही तो दिया।

कुएत आदि दूसरे शेख या शाह शासित प्रदेशों में धार्मिक बन्धन कुछ ज्यादा कड़े हैं। इसलिए बुरका भी वहाँ ज्यादा मजबूती के साथ पहना जाता है और नारी-जागरण भी उस मात्रा में कम दिखलाई पड़ता है। लेकिन मिस्र में यह बात नहीं। मिस्र की नारियों को देखकर तो यह लगता ही नहीं कि हम किसी अविकसित या अर्धविकसित एशियाई देश में हैं।

अरब नारी को यदि अवसर मिले तो वह समाज के हर क्षेत्र में पुरुषों के समान ही नहीं, उनसे आगे बढ़कर भी अपनी योग्यता सिद्ध कर सकती है। उसमें साहस है, क्षमता है बुद्धि है विवेक है। किसी छोटी अरब बालिका को देखिये तो वह साक्षात देवकन्या दिखाई देगी। किसी तरुणी की नीची नजरों से ताकिये तो आपका दिल बेकाबू हो जायेगा। किसी गृहस्थ महिला के यहाँ भोजन कीजिये तो वह आपको साक्षात अन्नपूर्णा दिखाई देगी। और यदि किसी पचास वर्ष से ऊपर की अरब माता के चरणों में बैठने का सौभाग्य आपको प्राप्त हो जाय तो आपको लगेगा कि ऐसी ही महिलाएँ वीर प्रसविनी कहलाने की अधि

कारिणी हैं।

इतिहास के पन्नों में अरबों की वीरता के अनेक उज्ज्वल आख्यान अंकित हैं। नये युग ने उसमें एक और पन्ना जोड़ा है। उस पर किसी अरब पुरुष की नहीं, अरब महिला की कहानी स्वर्णाक्षरों में लिखी गई है। यह कहानी है जमीला बुहरीदा की। यह महिला अल्जीरिया के स्वतन्त्रता संग्राम में लड़ाई के मोरचे पर काम करती हुई पकड़ी गई थी। फ्रांसीसी इसे पकड़ कर अपने फौजी शिविर में ले गये। उस पर तरह-तरह के अत्याचार किये गये, भाँति-भाँति के प्रलोभन दिये गये और कहा गया कि वह अपने साथियों का भेद फ्रांसीसी सरकार को
बतला दे। लेकिन जोन आफ आर्क की तरह उसने प्राण देना तो स्व मी
किया पर दुश्मन को अपना भेद बताना स्वीकार नहीं किया। परि णा
णामस्वरूप उसे फाँसी की सजा दी गई। सारे अरब राष्ट्रों में इस स जा में
की घोषणा से रोष छा गया। संसार की नारियों में इस वीर बाल जगह
प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी। विश्व के अनेक देशों ने, जिनमें भारत ियों को
फ्रांसीसी सरकार पर यह दबाव डाला कि वह इस महान ना री जमीन
फाँसी के तख्ते पर न चढ़ाये। विश्व जनमत के आगे फ्रां सी को झुक
पड़ा और जमीला फाँसी के तख्ते से उतार दी गई। आगोश में

इस तरह घर से लेकर रणक्षेत्र तक आज की अरब न नहीं था।
जौहर दिखा रही है। जिस देश की नारियाँ जाग उठती हैं नारों में
को फिर कभी कोई नहीं सुला सकता। अरब नारी के जा गे। न
महान अरब जाति के पुनर्जागरण की कल्पना सहज में हो स
सकती है।

प्रसाद कह कर पुकारा। देखिए, मैं आपसे कुछ छिपाता नहीं। मुझे कुरता पहने देख कर किसी भी सुन्दरी ने कहीं भी हाथ मिलाने से इन्कार नहीं किया।

आप कहेंगे, यह तो आपके लिए अच्छी ही बात रही। इस पर आपको खुश ही होना चाहिए।

जी हाँ मैं खुश तो था, लेकिन मेरी खुशी एक बात से जरा कुछ कम हो गई।

अजी वहाँ के किसी एक नासमझ आदमी ने हमारे एक साथी को, यह जानते हुए भी कि वह एक ऊँचे दर्जे के मुसलमान हैं, फर्राटे की अरबी बोलते हैं समझिए मरे बाजार में जेब काट ली!

राम राम! यह तो बहुत बुरा हुआ!

अजी अभी क्या हुआ, सुनिए न? हमारे एक साथी शक्ल से किसी कदर पाकिस्तानी लगते थे। माफ कीजिए, मैंने जरा गलत कहा शक्ल तो *हम हिन्दुस्तानी पाकिस्तानी सभी की एक सी ही होती है,* उनका लिबास जरा चोलेदार था। उनके साथ एक दिन और भी बुरी बीती।

हाँ-हाँ बताइए, क्या हुआ?

जी नहीं, आपको परनिन्दा सुनने का चस्का लगा मालूम पड़ता है। *आप यकीन करें या न करें, मैंने तो मिस्र से लौटने के बाद खुद* अपनी तारीफ और दूसरों की निन्दा करना एकदम छोड़ ही दिया है।

१२

अरबी साहित्य

समझ में नहीं आता कि मैं अपनी नाराज़ी किसपर व्यक्त करूँ? स्वयं अपने पर या मुझे अरब देश की यात्रा पर ले जाने वालों पर। अरब देशों की यात्रा पर जाने से पहले ही मैंने संयुक्त अरब गण राज्य के दिल्ली दूतावास वालों से साफ़-साफ़ कह दिया था कि यह तो एक संयोग मात्र है कि मैं अख़बार में नौकरी करता हूँ और इस नाते आपने मुझे इस यात्रा के लिए चुना है लेकिन दरअसल मैं हिन्दी का एक अदना साहित्य-सेवी हूँ। यूँ तो आप जो दिखाएँगे वह सब देखूँगा ही, पर मेरी दिलचस्पी इसमें है कि मैं आपके साहित्यकारों से मिलूँ आपके कलाकारों के दर्शन करूँ लोकगीतों का आनन्द उठाऊँ और देखूँ कि आपके लोकनृत्य कैसे होते हैं। मैंने उनसे अनुरोध किया कि अरबी साहित्य के संगठनों से परिचित कराया जाए। वहाँ की किसी साहित्य गोष्ठी में यदि सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे मिल सके तो बड़ी कृपा हो। मैंने एक नाम भी उन्हें बताया। कहा यदि आप मुझे अपने यहाँ के महान साहित्यकार श्री ताहा हुसेन से मिला देंगे तो मेरी यह सहस्रों मील लम्बी यात्रा सचमुच सफल हो जाएगी। लेकिन खेद है कि मेरी एक भी मनोकामना पूरी नहीं हो पाई। पत्रकारों के शिष्ट मंडल में मैं अख़बारनवीस ही रह गया और काहिरा इस्माइलिया पोर्ट सईद दमिश्क़ और कुएत में जाकर वही देख पाया जो किसी भी देश की सरकार विदेशी पत्रकारों को दिखाना चाहती है। मुझे एग्रीकल्चर के फ़ार्म दिखाए गए, कल्चर के केन्द्र नहीं। मुझे कल कारख़ानों में ले जाया गया, कला-केन्द्रों में नहीं। मैंने पशु-पक्षियों के

बड़े-बड़े केन्द्रों की धूल तो फाँकी, लेकिन साहित्य और संस्कृति के उन महान साधकों की चरणधूलि अपने सर पर न ले सका जिन्होंने आज अरबों की आत्मा की कायापलट कर डाली है।

फिर भी चलते चलते, उड़ते-उड़ते जहाँ-तहाँ पूछकर, इधर-उधर देखकर, कुछ पढ़कर कुछ सुनकर अरबी साहित्य के सम्बन्ध में जो श्रद्धा मैंने संचित की है उसे यहाँ आपको अर्पित कर रहा हूँ।

अरबी साहित्य आज का नहीं भारतीय साहित्य की तरह बड़ा पुराना है। उसकी जड़ें अतीत में बहुत गहरी गई हुई हैं। आजकल के इतिहासकार अरबों का अभ्युदय इस्लाम के आगमन से मानते हैं। इस्लाम यहाँ १३७६ ई० में आया था। लेकिन अरबी साहित्य उससे भी पुराना है। उसके प्रमाण आज भी सुरक्षित हैं। अरबों का यह प्राचीन साहित्य भारतीयों की तरह ही पद्यमय है और अधिकांश वीर पूजात्मक है। जैसे मुसलमानों के आगमन से पूर्व हमारे देश में हर राजा या शासक के साथ उसका एक राजकवि रहा करता था उसी प्रकार इस्लाम के आगमन से पूर्व अरबों के हर कबीले और खानदान के साथ एक-एक शायर हुआ करता था जो भारतीय चारणों या भाटों की तरह अपने कुल या कबीले के शौर्य एवं समृद्धि का बढ़ा-चढ़ाकर बखान किया करता था।

इस्लाम के पूर्व अरबों में मूर्ति-पूजा की भारी प्रथा थी। उस समय का अरबी साहित्य भी उसी प्रकार की श्रद्धा भावना से ओत प्रोत है। जिस प्रकार भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में नैसर्गिक तत्वों की छटा बिखरी पड़ी है वैसे ही अरबी का प्राचीन साहित्य भी पूर्व तथा मील नदी की महिमा से प्लावित और चाँद और सितारों से चमत्कृत है। उसमें रेगिस्तान और उसके अनन्य साथी ऊँट के भी विशद वर्णन पाए जाते हैं। प्राचीन अरबी साहित्य में जहाँ घोड़े को लेकर अनेक पद्य लिखे गए हैं वहाँ मरुभूमि को चाँदी बना देने वाले मोहक आकाश का भी बड़ा मनोरम वर्णन पाया जाता है।

इस्लाम के आगमन के बाद अरबी साहित्य में नया मोड़ आया।

मूर्ति-पूजा समाप्त हुई। उसके स्थान पर सर्वेश्वर और निराकार और सर्वव्यापी ईश्वर को मान्यता मिली। एक नये धर्म का उदय हुआ। हज़रत मोहम्मद साहिब और उनके अनुयायियों ने न केवल मूर्ति पूजा का विरोध किया वरन् उन्होंने साहित्य में चले आ रहे भविष्य योक्तिवाद और निराधार कल्पनावाद की भी निन्दा की। अरबी साहित्य में एक नये तत्व का उदय हुआ। कुरान शरीफ़ अरबी में लिखी गई। यहाँ के साहित्य पर आध्यात्मिकता की छाप पड़ने लगी। इस्लाम के प्रचार का दायित्व जब अरबों पर आया और वे दूसरे देशों के सम्पर्क में आए तो वहाँ के साहित्य का भी प्रभाव निश्चय रूप से अरबी साहित्य पर पड़ा। मध्यकालीन अरबी साहित्य में ईरान आदि की छाप बहुत स्पष्ट दिखाई देती है। इस युग में अरबी साहित्य में भी एक सूरदास हुए हैं। उनका शुभ नाम था अबुल आला मामरीं। इनकी रचनाओं में वेदान्त दर्शन की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। एक बार इनको किसी ने एक भुना हुआ तीतर भेज दिया था। उसे पाकर कवि ने जो उद्‌गार प्रकट किए उनकी मार्मिकता देखिए। वह कहते हैं ऐ तीतर ! तुझे यह सजा इस बात की मिली है कि तू तीतर बना चील नहीं बना। संसार में कमजोरों की सजा मौत के सिवा और कुछ नहीं है।

अरबी साहित्य नवोन्मेष अभी सौ वर्ष पूर्व की घटना है। यह नवोन्मेष अरबों की आत्मा में स्वतन्त्रता की अकुलाहट से आरम्भ हुआ था। अरब के साहित्यकारों ने अनुभव किया कि यदि अरबों को स्वतन्त्र, मजबूत और एक बनाना है तो चाँद सितारों की दुनिया का छोड़कर उनको धरती पर आना पड़ेगा। अब मानव जाति के कष्ट अध्यात्म चर्चा से दूर नहीं हो सकते। नई पीढ़ी को नये संघर्ष के लिए तैयार करने के लिए उन्हें मानवीय सुख दुख के गीत गाने पड़ेंगे। अरब के साहित्यकारों ने समय की मांग को पूरा करने के लिए आज़ादी, क्रान्ति और प्रगति के गीत धीमे-धीमे गाने शुरू किए।

भारत चाहे तो इस पर गर्व कर सकता है कि नये अरबी साहित्य

की जागृति का अग्रदूत भारत के हैदराबाद में रहे श्री सैयद जमालुद्दीन अफ़गानी थे। वह हैदराबाद से जाकर मिस्र में बस गये थे। वहाँ के साहित्य को उन्होंने नवयुग का पाठ पढ़ाया। हैदराबाद जिसने भारतकोकिला श्रीमती सरोजनीनायडू को चमकाया था। हैदराबाद जिसने हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय को अलौकिक प्रतिभा से मंडित किया। इसी हैदराबाद ने सैयद अफ़गानी को अपने यहाँ आश्रय देकर ऐसी साहित्य महिमा से मंडित किया जो अरब साहित्य में एक युग प्रवर्तक घटना के रूप में उदित हुए। श्री अफ़गानी ने अरबी साहित्य में जिस नये युग का आरम्भ किया था उसकी परम्परा को उनके शिष्य प्रशिष्यों ने दूर तक और देर तक बड़ी खूबी से निबाहा। इनमें से दो के नाम अरबी साहित्य में प्रमुख रूप से आदर के साथ लिए जाते हैं। वे हैं सर्वश्री रशीद रिदाज़ और जगसूल। इन साहित्यिकों ने अरबी भाषा की अनेक रूपों से सेवा की। देश में ही नहीं विदेशों में भी अरबी भाषा और साहित्य का प्रचार किया। पेरिस और न्यूयार्क में अरबी साहित्य के अध्ययन अध्यापन केन्द्र स्थापित कराए। इन्हीं दिनों में मिस्र में दैनिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। आज के दो प्रमुख अरबी दैनिक 'अल हिलाल' और 'अल अहराम' उसी युग की देन हैं। इन पत्रों की लोकप्रियता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आज इन दैनिकों की पाँच लाख से भी ऊपर प्रतियाँ प्रति दिन प्रकाशित होती हैं।

यूँ तो मिस्र और भारत में अनेक समानताएँ हैं लेकिन उनमें से एक का वर्णन यहाँ प्रसंगवश अनुचित नहीं होगा। जैसे भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए ईसाई मिशनरियों ने आरम्भ में बड़ा महत्व पूर्ण कार्य किया है वैसे ही अरबी भाषा को प्रचारित करने और उसे समृद्ध करने में भी ईसाइयों का हाथ बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। आरम्भ में हिन्दी को आगे बढ़ाने और उसमें साहित्य रचना कराने में जैसे भारत स्थित फोर्ट विलियम कालेज के श्री जार्ज गिलक्रिस्ट का नाम हिन्दी साहित्य में आदर के साथ लिया जाता है उसी प्रकार अरबी

साहित्य को समृद्ध बनाने में श्री जुर्जी ज़ेदान का नाम बहुत ही महत्व पूर्ण है। इन्होंने 'हामस हिसाल' प्रकाशन गृह की स्थापना करके कितनी ही जनोपयोगी पुस्तकों पत्रिकाओं और ग्रन्थों का अरबी भाषा में प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त ज़ेदान ने 'इस्लामी सभ्यता' का इतिहास पाँच खण्डों में प्रकाशित करके तथा इतने ही भागों में अरबी साहित्य का इतिहास छपवाकर बहुत ही उपयोगी कार्य किया।

इस समय अरबी साहित्य की गणना संसार के समृद्ध साहित्यों में की जा सकती है। उसकी समृद्धि का अन्दाज़ हम इस बात से सहज ही पा सकते हैं कि काहिरा का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय 'असहज़र' संसार के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से है और इसमें सब ही विषयों की शिक्षा अरबी माध्यम के द्वारा दी जाती है। अरबी भाषा में संसार की श्रेष्ठतम साहित्य कृतियों के अनुवाद उपलब्ध हैं। भारत के प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ महाभारत रामायण, गीता आदि ही नहीं आधुनिक युग के महान विचारकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। आज महात्मा गांधी, नेहरू जी तथा गुरुदेव टैगोर की पुस्तकें भी अरबी भाषा में सहज प्राप्त हैं।

आजकल अरबी साहित्य को जो लोग समृद्ध कर रहे हैं उनमें इन महानुभावों के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं डा० ताहा हुसैन, अब्दुल कादिर रा़जिनी डाक्टर हैकल अहमद अमीन तथा अब्बास अक़्क़ाद। इनमें से डाक्टर ताहा हुसैन मूर्धन्य माने जाते हैं। उन्होंने नौ सौ से ऊपर ग्रन्थों की रचना की है। वह उसी प्रकार के मौलिक विचारक हैं जैसे अपने यहाँ आचार्य विनोबा। वह वैसे ही वाणीविशारद हैं जसे हमारे यहाँ स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय थे। जनता और सरकार में उन्हें वैसे ही निर्विवाद आदर प्राप्त है जैसे हमारे यहां राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को। वह श्री चिन्तामणि देशमुख की तरह साहित्य कार पंडित और सरकार के मंत्री भी रह चुके हैं। उनकी आँखों की ज्योति जा चुकी है। लेकिन यह प्रज्ञाचक्षु जब बोलने लगते हैं तो

बुद्धिवादी से भी बुद्धिवादी श्रोता इनके पांडित्य से मोहित हुए बिना नहीं रहता। ज्ञान का अखण्ड कोष और वाणी का विमल वरदान इस महापुरुष को अजस्र रूप से प्राप्त है। जो साहित्य ताहा हुसैन को पैदा कर सकता है वह निःसन्देह कभी नहीं मर सकता।

१३

वृक्ष एक शाखा दो

क्षमा कीजिए आज से मैं अरबों को छोड़कर मिस्रियों को विजातीय मानने से इन्कार कर रहा हूँ। आप चाहे बुरा मानें मुझे दकियानूस कहें पुराणपंथी पण्डित कहकर गालियाँ दें लेकिन मैं भरी भीड़ में किसी ऊँचे स्थान पर चढ़कर जोर-जोर से पूरी ताकत के साथ यह कहना चाहता हूँ कि भारत और मिस्र एक ही वृक्ष की दो शाखाएं हैं। एक ही रक्त हम दोनों की धमनियों में पूरी उष्णता के साथ प्रवाहित हो रहा है। हम दोनों के पुरखे कभी एक थे। हम दोनों के आचार-विचार कभी एक थे और संस्कृति भी कभी एक थी धर्म भी एक ही रहा होगा। यह मेरा पक्का विश्वास है। काल का कितना ही गहरा पर्दा इन सम्बन्धों पर आकर क्यों न पड़ गया हो, खून के रिश्ते कभी जुदा नहीं हो सकते। हजारों वर्ष के घने कोहरे के बाद आज भी ऐसे अनेक प्रमाण हैं जो मेरी इस आस्था को सत्य सिद्ध कर रहे हैं।

इतिहास के विद्वान, भाषा साहित्य और पुरातत्व के अन्वेषकों से मेरी अत्यन्त विनम्र प्रार्थना है कि वे इस तथ्य की ओर गम्भीरता से ध्यान दें कि आज से पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व या उससे भी कभी आगे ऐसा समय कब आया था जब भारत के लोग समुद्र के मार्ग से सोमाली में उतरे और वहाँ से मिस्र में उत्तर की ओर फैलते गए ?

भारतीय पुराणों के विशेषज्ञों से मेरा यह अनुरोध है कि वे इस बात का पता लगाएं कि पुराणों की रचना हमारे ऋषियों ने भारत में की या मिस्र में प्राचीन मिस्र के वासी गरुड़ का वंशज अपने को मानते

में और गरुड़ अपने देवता विष्णु का अनन्य भक्त और सहचर है। वहाँ के राजा अपने को सूर्यवंशी कहते रहे हैं। प्राचीन मिस्र के सांस्कृतिक इतिहास में यह आख्यान आता है कि आइसिस जो सूर्य की माता तथा असिरिस की साध्वी पत्नी थी उसने सत नामक राक्षस द्वारा अपने पति की हत्या को जाने पर, उसके उन बाईस टुकड़ों को एकत्रित करके दफन किया जो सत ने मिस्र में इधर-उधर फेंक दिए थे। मिस्रियों का विश्वास है कि असिरिस की इसी समाधिस्थ देह से नाज की बालियाँ फूटी हैं। हमारे पुराणों में दिति-अदिति कद्रु और वनिता, सुर और असुरों की उत्पत्ति के कई आख्यान ऐसे हैं जो मिस्र के उपाख्यानों से एक दम मिलते हैं। उत्तर मिस्र के रहने वाले दक्षिण मिस्र को यम का देश मानते थे। उन्होंने किसी ऐसी जाति पर विजय की थी जिसके दुम लगाकर वे उनका चित्रण करते थे।

जहाँ तक मेरा विश्वास है और जो मैंने मिस्र की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के सम्बन्ध में पढ़ा है देखा है और सुना है उसके अनुसार मैं तो इसी नतीजे पर पहुँचा हूं कि मिस्र में इस्लाम के आगमन से पूर्व तक आचार-विचार धर्म और संस्कृति की वही पावन ज्योति जलती थी जो भारत में युग-युग से प्रकाशमान चली आई थी। मैंने काहिरा के पुरातत्व संग्रहालय में धनुधारी वीरों की वे प्रागैतिहासिक मूर्तियाँ देखीं जिन्हें देखकर सूर्यवंशी राम का सहज ही भ्रम हो सकता था। मैंने मिस्र के बादशाहों के ताबूतों में सूर्य और राम के चित्र देखे वैतरणी नदी बहती हुई देखी लक्ष्य को साधनावस्था में साधकों की मग्न प्रतिमाएँ देखीं। प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर देखे और देखा कि आज भी अरबों के मन में जो भारतीयों के प्रति सहज बन्धुत्व है वह केवल राजनैतिक नहीं, उसके पीछे कुछ अलक्ष्य रिश्ते जुड़े हुए हैं।

मिस्र की प्राचीन संस्कृति का अध्ययन करते समय हमें यह पता चलता है कि आज से चार पाँच हजार वर्ष पूर्व मिस्र में त्रिमूर्ति की आराधना होती थी। मिस्रवासी भी भारतीयों की तरह त्रिगुणोपासक थे। लोक की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व देते थे। सब योनियों

में मानव योनि को सर्वश्रेष्ठ समझते थे और आत्मा को अमर मानते थे। कर्म के अनुसार उनका समाज भी ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य आदि द्विजों की तरह पुरोहित, सैनिक तथा कृषकों में विभक्त था। सूअर पालने वाले बस्ती से अलग रहते थे। मिस्री समाज में उनका स्थान वही था जो हमारे यहाँ शूद्रों का गिना जाता था।

समाज में पुरोहितों का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। वे पंचकेश मुड़वाते थे इतना ही नहीं वे उपवास रखते थे और दिन में कई-कई बार स्नान किया करते थे। चर्म प्रयोग इनके लिए वर्जित था। ये निरामिष भोजन करते थे। किन्तु कुछ विशेष त्यौहारों पर ये लोग पशु काटकर देवताओं को भोग लगाया करते थे और ऐसी अवस्था में मास प्रसाद भी खाया करते थे। जो पुरोहित पशु-बलि करते थे वे दास कहलाते थे। हमारे वेदों में इन्हें घर्मा कहा गया है। संस्कृत में 'ध' धातु काटने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। मिस्र का 'कोन' और भारतीय 'घर्मा' शब्द की व्युत्पत्ति एक ही धातु से हुई दिखाई देती है। इतनी अधिक समानता है दोनों देशों के प्राचीन पुरोहितों में।

वैतरणी की तरह प्राचीन मिस्री पाताल-झील की कल्पना में विश्वास करते थे। पूर्णमासी उनके यहाँ प्रमुख धार्मिक उत्सव था। दीपावली के समान उनके यहाँ भी एक त्यौहार मनाया जाता था और नगर ग्राम दीपमालिका से जगमगा उठते थे। मिस्री जन भारतीयों के सत्यनारायण व्रत की तरह अपने यहाँ सत्य का त्यौहार भी मनाया करते थे। भारत के समान कृषि प्रधान देश होने के कारण प्राचीन मिस्र के खेतिहर भी फसलों की कटाई पर उत्सव मनाते थे। यज्ञ और बलि किया करते थे। तुला और मकर सक्रांति भी मिस्रियों के प्रमुख त्यौहार थे, इसके अनेक प्रमाण प्राचीन मिस्री ग्रंथों से मिले हैं। व्रत और अनुष्ठान में पति पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। विशेष अवसरों पर मूर्तियों के जलूस निकाले जाते थे। इनके आगे मंगल कलश होते थे। धर्म में संगीत का प्रमुख स्थान था।

भारतवासियों और मिस्रियों की समता केवल धर्म तक ही सीमित

हो, ऐसी बात नहीं, दोनों के दैनिक जीवन रहन-सहन और आमोद प्रमोद में भी अनेक समानताएँ थीं। उदाहरण के लिए मिस्रवासी भी गाय को पवित्र एवं पूजनीय मानते थे। अतिथियों का स्वागत पुष्प मालाएँ पहनाकर किया जाता था तथा रसोई में हाथ मुँह धो जूते उतारकर बैठने का प्रचलन था। मिस्री भी भारतीयों के समान अलंकार प्रेमी थे। सौंदर्य प्रसाधनों में काजल और सुरमे अंगराग और इत्र प्रयोग में लाए जाते थे। मेंहदी भी रचाई जाती थी। केश में पुष्प लगाने का भी रिवाज था। और कमल वहाँ के लोगों का प्रिय पुष्प था।

मिस्री भारतवासियों के समान दाहिने हाथ से भोजन करते थे। यूरोपवासियों के समान उनके यहाँ छुरी कांटों का चलन नहीं था। भोजन के पूर्व मंत्रोच्चारण की भी प्रथा थी।

प्राचीन भित्ति-चित्रों के देखने पर ज्ञात होता है कि मिस्र में रथ का चलन था। नौकाएँ भी यातायात के काम में लाई जाती थीं। जिन वाद्यों के चित्र मिले हैं वे भारत में प्रयोग में लाए जाने वाले वाद्यों ही के समान हैं।

दोनों देशों की भाषाओं का मूल स्रोत एक ही रहा है यह तो इतिहासकार स्वीकार ही करते हैं। किन्तु प्राचीन मिस्री भाषा और संस्कृत में भी कुछ-न-कुछ संबंध रहा है, छान-बीन करने पर यह भी प्रमाणित किया जा सकता है। नामों में समानता, उच्चारण में समता और अर्थों की एकता कितने ही शब्दों में देखने योग्य है। उदाहरण के लिए बाज के लिए संस्कृत में श्येन शब्द है, मिस्री इसे श्येन कहते थे। इसी प्रकार साधु को 'साहू' तथा देह को 'दे' कहा जाता था। प्रजा के लिए मिस्री 'पेर' शब्द इस्तेमाल करते थे। भी को 'सर' कहा करते थे। मिस्री भाषा में हृदय को 'हृत' तथा सुता (बेटी) को 'सित' कहते थे। इतना ही नहीं मिस्र के साथ हमारे शादी-विवाह के संबंध भी थे। श्रीकृष्ण के नाती अनिरुद्ध का विवाह मिस्र देश की कन्या ऊषा से हुआ था। मिस्र की संस्कृति जब अपने चरम-उत्कर्ष पर थी तब यूरोप के सभ्य

देश अज्ञान की गहरी नींद में सोये हुए थे। मिस्र ने ही यूनान को पहले पहल सभ्य बनाया। यह यूनान ही आगे चलकर यूरोपीय जागृति का कारण बना। प्रश्न होता है कि मध्य एशिया में चतुर्दिक बर्बर लोगों से घिरा हुआ यह प्रदेश यकायक इतना सभ्य इतना सुसंस्कृत इतना भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश कैसे बन गया। इसका उत्तर एक ही है, वह यह है कि कोई चीज थी जो भारत और मिस्र को एकता के सूत्र में जोड़े हुए थी। वह केवल व्यापार नहीं हो सकता वह दोनों देशों के परस्पर के राजनीतिक संबंध भी नहीं हो सकते। इतिहास के गहरे गर्त में दबा हुआ कोई ऐसा ही पुरुषार्थ है जैसा कि अशोक के समय में भारतवासियों ने प्रदर्शित किया था। ऐसा लगता है कि दूर प्रागैतिहासिक काल में किसी महान बोधवृक्ष की कोई शाखा मिस्र को गई होगी। इतिहासकार दबे स्वरों में ऐसी बात स्वीकार भी करते हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि गणित ज्योतिष वैद्यक संगीत चित्र कला नौकानयन वस्त्रों, वस्त्र सज्जा और रथ-युद्ध संसार को भारत की ही देन हैं। इतिहासकारों का यह भी कहना है कि भारतीय आर्यों की दो शाखाएँ कभी ज्ञान का दीप लेकर पश्चिम की ओर बढ़ी थीं, जिसमें से एक मिस्र में पहुँची और दूसरी ईरान आदि प्रदेशों में। आज के विज्ञान को, आज की जिज्ञासा को, इन टूटी हुई कड़ियों का फिर से जोड़ना है। इन बिखरे हुए सूत्रों को फिर से सम्हालना है। यह खोज न केवल भारत और मिस्र के लिए, बल्कि संसार की मानव संस्कृति के इतिहास के लिए भी मूल्यवान सिद्ध हो सके।

हो, ऐसी बात नहीं दोनों के दैनिक जीवन रहन-सहन और आमोद प्रमोद में भी अनेक समानताएँ थीं। उदाहरण के लिए मिस्रवासी भी गाय को पवित्र एवं पूजनीय मानते थे। अतिथियों का स्वागत पुष्प मालाएँ पहनाकर किया जाता था तथा रसोई में हाथ मुँह धो जूते उतारकर बैठने का प्रचलन था। मिस्री भी भारतीयों के समान अलंकार प्रेमी थे। सौंदर्य प्रसाधनों में काजल और सुरमे अंगराग और इत्र प्रयोग में लाए जाते थे। मेंहदी भी रचाई जाती थी। केश में पुष्प लगाने का भी रिवाज था। और कमल वहाँ के लोगों का प्रिय पुष्प था।

मिस्री भारतवासियों के समान दाहिने हाथ से भोजन करते थे। यूरोपवासियों के समान उनके यहाँ छुरी काँटों का चलन नहीं था। भोजन के पूर्व मंत्रोच्चारण की भी प्रथा थी।

प्राचीन भित्ति चित्रों के देखने पर ज्ञात होता है कि मिस्र में रथ का चलन था। नौकाएँ भी यातायात के काम में लाई जाती थीं। जिन वाद्ययंत्रों के चित्र मिले हैं वे भारत में प्रयोग में लाए जाने वाले वाद्ययंत्रों ही के समान हैं।

दोनों देशों की भाषाओं का मूल स्रोत एक ही रहा है, यह तो इतिहासकार स्वीकार ही करते हैं। किन्तु प्राचीन मिस्री भाषा और संस्कृत में भी कुछ-न-कुछ संबंध रहा है छान-बीन करने पर यह भी प्रमाणित किया जा सकता है। नामों में समानता उच्चारण में समता और अर्थों की एकता कितने ही शब्दों में देखने योग्य है। उदाहरण के लिए बाज के लिए संस्कृत में श्येन शब्द है, मिस्री इसे श्येन कहते थे। इसी प्रकार साधु को 'साधु' तथा देह को 'दे' कहा जाता था। प्रजा के लिए मिस्री 'पेर' शब्द इस्तेमाल करते थे। घी को 'सर' कहा करते थे। मिस्री भाषा में हृदय को 'हृव' तथा सुता (बेटी) को 'सित' कहते थे। इतना ही नहीं मिस्र के साथ हमारे शादी-विवाह के संबंध भी थे। श्रीकृष्ण के नाती अनिरुद्ध का विवाह मिस्र देश की कन्या ऊषा से हुआ था। मिस्र की संस्कृति जब अपने चरम-उत्कर्ष पर थी तब यूरोप के अन्य

देश अज्ञान की गहरी नींद में सोये हुए थे। मिस्र ने ही यूनान को पहले पहल सभ्य बनाया। यह यूनान ही आगे चलकर यूरोपीय जागृति का कारण बना। प्रश्न होता है कि मध्य एशिया में चतुर्दिक बर्बर लोगों से घिरा हुआ यह प्रदेश यकायक इतना सभ्य इतना सुसंस्कृत इतना भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश कैसे बन गया। इसका उत्तर एक ही है वह यह है कि कोई चीज थी जो भारत और मिस्र को एकता के सूत्र में जोड़े हुए थी। वह केवल व्यापार नहीं हो सकता वह दोनों देशों के परस्पर के राजनीतिक संबंध भी नहीं हो सकते। इतिहास के गहरे गर्त में दबा हुआ कोई ऐसा ही पुरुषार्थ है जैसा कि अशोक के समय में भारतवासियों ने प्रदर्शित किया था। ऐसा लगता है कि दूर प्रागैतिहासिक काल में किसी महान बोधवृक्ष की कोई शाखा मिस्र को गई होगी। इतिहासकार दबे स्वरों में ऐसी बात स्वीकार भी करते हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि गणित ज्योतिष वैद्यक संगीत चित्र कला, नौकानयन खेती वस्त्र सज्जा और रथ-युद्ध संसार को भारत की ही देन हैं। इतिहासकारों का यह भी कहना है कि भारतीय आर्यों की दो शाखाएँ कभी ज्ञान का दीप लेकर पश्चिम की ओर बढ़ी थीं जिसमें से एक मिस्र में पहुँची और दूसरी ईरान आदि प्रदेशों में। आज के विज्ञान को, आज की विद्वत्ता को, इन टूटी हुई कड़ियों को फिर से जोड़ना है। इन बिखरे हुए सूत्रों को फिर से सम्हालना है। यह खोज न केवल भारत और मिस्र के लिए, बल्कि संसार की मानव संस्कृति के इतिहास के लिए भी मूल्यवान सिद्ध हो सके।

१४

नेहरू और नासिर

नेहरू और नासिर दोनों ही के नाम नकार से प्रारम्भ होते हैं। संसार के ये दो बड़े नेता अपनी-अपनी रुचियों में किसी कदर नफ़ासत पसन्द हैं और दोनों को ही शासन और समाज में चले आने वाले पुराने तौर-तरीक़ों से गहरी नफ़रत है। दोनों ही अपने-अपने देशों में विदेशी हस्तक्षेप को नापसन्द करते हैं। यद्यपि नेहरू को अपने जीवन में फौजी ट्रेनिंग प्राप्त नहीं हुई, लेकिन फिर भी व अनुशासन और चुस्ती के नमूने हैं और इसी तरह श्री नासिर को यद्यपि सार्वजनिक जीवन बिताने का कभी कोई मौक़ा नहीं मिला फिर भी वे अपनी अरब जाति में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से भी अधिक लोकप्रिय हैं। इसका कारण यह है कि इन दोनों को ही क़ुदरत ने वह मज़ात बख्शी है जो एक जन्मजात नेता में होती है।

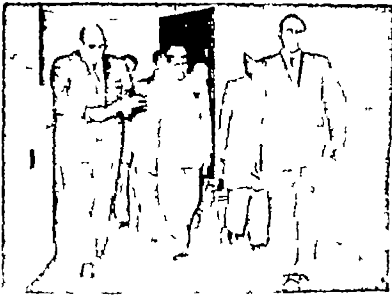
दोनों ही अपने-अपने देश की जनता के लाड़ले हैं। दोनों के नाम में और व्यक्तित्व में कुछ अजब जादू है कि लोग घर-बार काम-काज छोड़कर हज़ारों-लाखों की तादाद में दोनों को देखने और सुनने के लिये उमड़ पड़ते हैं। लोगों के दिलों पर कैसे काबू किया जाता है और कैसे उन्हें किसी काम के लिये दीवाना बनाया जा सकता है इसका गुर दोनों अच्छी तरह जानते हैं। जज़बाती लोगों के दिलों का शोषण करना कोई इनसे सीखे। मैंने अपने देश में लोगों को नेहरू के नाम के पीछे कष्ट सहकर भी बावले होते देखा है और नासिर के नाम और काम के पीछे न केवल मिस्र और सीरिया बल्कि जिन-जिन देशों में भी अरब लोग बसते हैं उनमें एक अजब दीवानापन विद्यमान है।



भारत के लोकप्रिय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल
नेहरू जो राष्ट्रपति नासिर के अभिन्न मित्र हैं।



लेखक को भेंट किया हुआ राष्ट्रपति
नासिर का हस्ताक्षर-युक्त चित्र



लेखक मरवी के प्रमुख दैनिक पत्र अल-अखबारे योम के संचालक-संपादक के साथ



देश है उसने अपनी आजादी भी शान्तिमय तरीकों से हासिल की है आजादी के बाद भी वह अपनी समस्याओं को शान्तिपूर्ण उपायों से हल कर रहा है। उसका नेता नेहरू भी आज संसार में शान्ति का रहनुमा समझा जाता है लेकिन अरब लोग स्वभाव से ही भावुक और एक खास किस्म के जोशीले व्यक्ति होते हैं। मिस्र ने अपनी आजादी हथियारों के बल पर प्राप्त की है और उस आजादी की रक्षा के लिये भी उसकी संगीनें हरदम तनी रहती हैं। उसका नेता नासिर भी जोश खरोश और क्रान्ति का संदेशवाहक है।

भारतीय क्षितिज पर नेहरू का उदय सर्वधर्म-समन्वय सर्वोदय और सद्भाव एवं अहिंसा के वातावरण में हुआ है। वह बीसवीं शताब्दी के महान् सन्त महात्मा गांधी की देन है। बचपन में दबंग पिता और विद्यार्थी जीवन में विलायती हवा से उन्होंने अवश्य कुछ नफ़रत के पाठ पढ़े थे लेकिन सेवाग्राम की कुटिया में साबरमती के आश्रम में राजनीति के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्होंने तीस वर्ष तक लगातार अहिंसा का चमत्कार देखा है। वह उनके मन प्राण में ऐसा समा गया है कि नफ़रत को दूर शासन और राजनीति में भी वह आज की दुनिया की कूटनीति को छिपाकर नहीं बरत सकते। एक अच्छी खासी सेना के स्वामी होते हुए भी वे सैन्य बल को तुच्छ समझते हैं। विश्व-सरन्वस को जीतने के लिये उनके पास दो ही हथियार हैं—एक सहयोग और दूसरा सद्भाव। इसके विपरीत नासिर ने अपने देश की कायापलट हथियारों के बल से की है। उसने नई क्रान्ति के विरोधियों के साथ भी कोई खास दया का बर्ताव नहीं किया। जिस तरह उसने फारुक को शाही तख्त से उतार फेंका था उसी प्रकार उसने फारुक के समर्थकों और क्रान्ति के रोड़ों को भी अपने रास्ते से उखाड़ फेंका। वह स्वेज के सवाल को लेकर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों से भिड़ गया। और यह जानते हुए भी कि इन राष्ट्रों की पीठ पर बड़े-बड़ों का हाथ है वह उसके सामने भी सीना ताने खड़ा हुआ है। एक भेद और भी, कि नेहरू जब बोलते हैं तो दूसरों की निन्दा प्राय नहीं करते और करते भी हैं तो किन्तु-परन्तु

के साथ। लेकिन जब नासिर बोलने खड़े होते हैं तो उनका तीन-चौथाई भाषण विरोधियों पर वाक्-बाण बरसाते ही बीतता है। उनकी कार्रवाइ में भी कूटनीति से कम साम्य उनके हथियारों का नहीं होता।

नेहरू से लोग मोहब्बत करते हैं इसका रहस्य कुछ उसका मोहक व्यक्तित्व ज्यादा उसकी त्याग-तपस्या, कुछ अपनी उसकी अपने देश के प्रति लगन और उससे भी ज्यादा उसकी अमनमनसाहत और ईमानदारी है। वह अपनी देश की जनता का खिलौना है। लोग उसकी शक्ल से प्यार करते हैं लोग उसके लहजे और कपड़ों की नकल करते हैं, लोग उसकी अदाओं पर निसार होते हैं और उसकी खीज पर रीझते हैं। उसका जादू उसके समर्थकों पर ही नहीं उसके विरोधियों पर भी चलता है। आज उसके समर्थक उसके प्रेमी यही सोचते नजर आते हैं कि नेहरू के बाद क्या होगा? और उसके विरोधी रात-दिन यही सोचते हैं कि नेहरू के रहते कुछ नहीं हो सकता है।

इसी तरह अरब लोग नासिर से भी बेहद मुहब्बत करते हैं। मोहब्बत केवल जबानी नहीं, वह आज उसके लिये जान भी देने को तैयार हैं। मैं अपने दौरे में जहाँ-जहाँ जिस-जिस जगह गया अक्सर लोगों ने मुझसे पूछा—आप नासिर से मिले? कैसा है वह? खुदा उसका भला करे। अब सोई हुई अरब जाति जागेगी। अब अरबों की किस्मत का सितारा बुलन्द हो गया। लेकिन साथ ही साथ मैंने यह बात भी महसूस की कि नासिर के प्रति लोगों के प्रेम का रहस्य है कि वह ऐसा शासक है जिसे कठोर कहा जा सकता है जो दुश्मन को ललकार सकता है विरोधी जिससे भय खाते हैं। यानी नासिर का प्रेम केवल उसके विगास व्यक्तित्व से ही सम्बद्ध नहीं वह ललकार और भय से भी युक्त है।

लोग उसकी ललकार के प्रति सजग रहें और उससे भय खाते रहें इसके प्रति नासिर सावधान भी कम नहीं है। ऊपर जिस सार्वजनिक सभा का मैंने जिक्र किया है उसमें पूरा फौजी प्रबन्ध था। बड़ा भारी खुफिया इन्तजाम था। और नासिर उसमें आये भी पूरे फौजी तौर

तरीके से। सुरक्षा पुलिस का प्रबन्ध नेहरू जी के लिये भी कम नहीं होता लेकिन नेहरू को यह सब पसन्द नहीं। वह मौका मिलते ही सारे सुरक्षा प्रबन्ध को छिन्न भिन्न कर देते हैं। नेहरू जनता के जनतन्त्र के आदमी हैं और वे उसी के होकर भी रहना चाहते हैं। लेकिन नासिर फौज के और फौजी शासन के आदमी हैं और अपनी इस विशेषता को खोना भी नहीं चाहते।

लेकिन उसका अर्थ यह नहीं है कि नासिर डिक्टेटर होने का स्वप्न देख रहे हों। या जनता या जनतन्त्र से उन्हें कोई दिली लगाव नहीं है। सचाई तो यह है कि वे भी नेहरू के समान जनकल्याण के पक्षपाती हैं। अपने यहां जनतान्त्रिक व्यवस्था भी वे चालू करने में लगे हुए हैं लेकिन वे ऐसे जनतन्त्र के विरोधी हैं कि जिसमें हर आदमी को मनमानी करने का और गाली देने का हक हासिल हो जाता है। एक निजी मुलाकात में हम लोगों के प्रश्न करने पर उन्होंने बताया था कि हमारी समस्याएँ एकदम भारत जैसी नहीं हैं। हमारे यहाँ शिक्षा और राजनीतिक चेतना भी अभी पूरी तरह जागृत नहीं हुई है। हमारे यहाँ नवजागृत राष्ट्रीयता को अभी देशी-विदेशी षडयन्त्रों का भी खतरा लगा रहता है। हम चारों ओर दुश्मनों से घिरे हुए हैं ऐसे समय हम अपनी मुट्ठी ढीली नहीं कर सकते। हम अरबों को जनतन्त्री अधिकार देंगे अवश्य देंगे लेकिन धीरे-धीरे कदम फूंक-फूंककर।

नेहरू के चरित्र की एक विशेषता है कि वह गलती करते हैं गलतियों पर अड़ते हैं लेकिन महसूस होते ही ढीले पड़ जाते हैं और उन पर पछताते भी हैं। नेहरू को अपने देश की बड़ी चिन्ता है। लेकिन वे अपने देश की समस्याओं को एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखते। उसे संसार की समस्याओं के साथ तोलते हैं। और देश के साथ विदेशों की समस्या को भी कभी-कभी ऐसा चमत्कारिक स्पर्श दे जाते हैं कि संसार के राजनीतिक दंग रह जाते हैं। आजादी के संघर्ष के दिनों में नेहरूजी ने संसार के देशों की सहानुभूति अपने देश की ओर खींचने में कम कोशिश नहीं की थी। आज भी वे भारत की उन्नति करने में विदेशों

की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त कर रहे हैं। दुनिया में रूस और अमरीका भले ही परस्पर एक-दूसरे के विरोधी हों लेकिन भारत की सेवा सहायता के मामले में दोनों दत्तचित्त हैं।

नासिर के साथ यह बात नहीं है। उनका ध्यान इस समय सारे संसार पर नहीं, सिर्फ अरबों की दुनिया पर केन्द्रित है। अरबों का दोस्त उनका दोस्त है अरबों का दुश्मन उनका दुश्मन है। दोस्त के साथ वे गर्दन कटा सकते हैं और दुश्मन की छाती पर चढ़कर खून भी पी सकते हैं। संसार की उलट-पलट को वह सिर्फ अरबों के साथ सामंजस्य मिला कर देखते हैं। इसके लिये लोग चाहे उन्हें संकीर्णतावादी या डिक्टेटर भले ही कह लें लेकिन वह अपने आपको विश्व का बहुत बड़ा नेता या राजनीतिज्ञ मनवाना नहीं चाहते। यदि उनके लिए समस्त अरब राष्ट्र एक हो गए तो यही उनके लिए सबसे बड़ा काम होगा।

जैसे नेहरू भारत की एकता के लिए उसकी सुख-समृद्धि के लिए अपना जीवन समर्पित किये हुए हैं वैसे ही नासिर भी अरबों की एकता के लिए, उनकी सुख-समृद्धि के लिए अपनी जी-जान की बाजी लगा चुके हैं। दोनों ही एशियाई देशों के पुनरुत्थान का सपना अपनी पलकों में संजोये हुए हैं और दोनों के दिलों में दबाये हुए अफ्रीकी लोगों के प्रति गहरी टीस है। बांडुग-सम्मेलन ने दोनों को अत्यन्त निकट ला दिया है। और मैंने देखा कि नासिर के अपने कमरे में उसके आसन के सामने नेहरू की अच्छी तसवीर लगी हुई है। मैंने यह भी देखा कि नेहरू का देश इस समय अरबों के पुनरुत्थान के लिये आगे बढ़कर हाथ बटाने में संलग्न है और यह देखा कि नासिर का देश फिरका-वादी मुस्लिम जमातों और देशों के मिथ्या प्रचार को निस्सार समझकर नेहरू के देश की जटिल समस्याओं के साथ अपना कन्धा भिड़ाने को सदैव उद्यत है। ईश्वर करे संसार के रंगमंच पर नेहरू और नासिर की जोड़ी अमर रहे और अपने-अपने इरादों में वे सफल हों। इनकी सफलता में भी मुझे सन्देह नहीं है। सिर्फ इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि नेहरू यद्यपि बहुगुणसम्पन्न हैं लेकिन नासिर की दृढ़ता

उनके लिए अपनाने की वस्तु है और प्रेजीडेन्ट नासिर को जो अत्यधिक पुरुषार्थी, योग्य और ईमानदार हैं उन्हें भी नेहरू के स्वभाव के लचीला-पन को अंगीकार करना चाहिए। यदि यह समन्वय हो गया तो वह दिन दूर नहीं जब विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर क्रुश्चेव और मार अनहावर की तरह नासिर और नेहरू के नारे भी जोर-शोर से बुलन होने लगेंगे।

१५

अरबों की समस्याएं

संयुक्त अरब गणराज्य के छोटे-से दौरे में मैंने बहुत कुछ नहीं देखा। यूं गिनाने को मैंने कुएत सीरिया और मिस्र यह तीन देश देख लिए। प्रेसीडेंट नासिर भूतपूर्व प्रेसीडेंट कुव्वतअली और कुएत के शेख से मिल लिया। दमिश्क, काहिरा सिकन्दरिया इस्माइलिया और पोर्टसईद जैसे महत्वपूर्ण नगरों की भी झांकी कर आया। लेकिन सचाई यह है कि ऐसा बहुत कुछ रह गया जो मैंने नहीं देखा, और जो मुझे अवश्य ही देखना चाहिए था।

फिर भी इस भागदौड़ में जितना देख लिया वह कम तसल्ली वाला नहीं है। पहली बात, जो मैं देखने गया था वह यह कि अरबों के साथ हमारी मित्रता क्या केवल राजनीतिक है या उस मित्रता के पीछे कोई सच्ची हार्दिकता भी है। आपसे मैं छिपाऊंगा नहीं—यात्रा पर जाने से पूर्व मेरा मन अविश्वासी था। मध्य एशिया से आने वाली जातियों ने जिस प्रकार धर्म के नाम पर हमारी कला संस्कृति सभ्यता और पुरातत्व निधि को खंडित और भूलुंठित किया है उसका घाव आसानी से नहीं भर सकते। मेरे मन में भी इन सब चोटों की चोट कम गहरी नहीं है। विभाजन से पूर्व भारतीय मुसलमानों की धार्मिक असहिष्णुता ने भी मुझे कम व्यथित नहीं किया था। मैं समझता था कि मुसलमान-मुसलमान सब एक हैं और आज किन्हीं कारणों से भले ही अलग-अलग दिखाई देते हों लेकिन समय आने पर यह सब फिर एक हो जाएँगे और यदि किसी धार्मिक नेता ने फूंक भर दी तो यह भी असंभव नहीं कि यह सब भारत पर चढ़ दौड़ें। लेकिन अपने दौरे में मैंने यह अनुभव किया कि ऐसा सोचना मेरी भूल थी। जहाँ तक

अरब गणराज्य का सबब है, हमारी राजनीति को इस प्रकार का कोई भय नहीं। यह ठीक है कि अरब इस्लाम के बड़ पक्के अनुयायी हैं, लेकिन जहां तक मैंने देखा उनमें धर्मान्धता नहीं है। मानवता क नवोन्मेष ने और समय के तकाजे ने अरबों को ज्ञान के नए प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया। यह ठीक है कि अरब पक्के राष्ट्रवादी हैं लेकिन उनके नेता विश्व की समस्याओं पर मजहबी दृष्टि स कतई विचार नहीं करते। कल क्या होगा? इसको आज कौन कह सकता है। लेकिन आज की स्थिति यह है कि अरबों के अत्यत शान्तिप्रिय और परम शक्तिशाली नेता प्रेसीडेंट नासिर भी धर्मान्ध-साम्प्रदायिक लोगों को वैसी ही नफरत से देखते हैं जैसे कि हमारे नेहरू जी। अरब लोग भारत को अपना जिगरी दोस्त मानते हैं। नेहरू जी से उन्हें वैसी ही मुहब्बत है जैसी भारतीयों से। वे हमारी तरह ही पाकिस्तान के रवैये को नापसंद करते हैं। हमारी तरह ही वे पश्चिम के साम्राज्यवादी हथकंडों से सतर्क हैं, और रूस या अमरीका की सहायता आँख मूँद कर स्वीकार नहीं करते।

दूसरी बात जो मैंने अपनी यात्रा में देखी वह यह—सारे अरब देशों में इस समय परस्पर निकट आने की एक होने की मिलकर चलने की अकुलाहट बढ़ रही है। मैं उन देशों के नाम नहीं गिनाऊँगा जो इस समय संयुक्त अरब गणराज्य स बाहर हैं, या दूसरों क इशारों पर खेल रहे हैं। मैं तो सिर्फ यही बताऊंगा कि इस समय ससार के हर अरब देश की जनता यह चाहती है कि उसके अलग-अलग शासन और सीमाओं के बधन टूट जाएँ और वे अपने दूर-दूर फैले अरब भाइयों से दौड़कर गले मिल सकें। सबकी निगाह इस कार्य के लिए इस समय प्रेसीडेंट नासिर की ओर है उनका विश्वास है कि यही एक व्यक्ति ऐसा है जो सपूर्ण अरब जाति को एक झडे के नीचे खड़ा कर सकता है। मिस्र को स्वतत्र करने और सीरिया को सयुक्त करने के बाद प्रेसीडेंट नासिर का भी यही प्यारा स्वप्न है। इस मार्ग में रुकावटें भी कम नहीं हैं। बहुतसे राजघराने हैं जो अरब जनता की छाती पर साँप की तरह बैठे हुए हैं और जो वहाँ से किसी भी प्रकार हटने को तैयार नहीं।

कुछ विदेशी षडयन्त्र भी मार्ग में रोड़े अटका रहे हैं। कुछ निहित स्वार्थ वाले लोगों का तबका भी इस तरह की रुकावट है, लेकिन मेरा विश्वास है कि जनता प्रबुद्ध हो जाती है तब कोई भी रुकावट उसे अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती। आज नहीं तो कल सब अरब देश भी अपनी गरदन पर से साम्राज्यवादी जुआ उतार फेंकेंगे।

तीसरी बात जो मैंने इस दौर में लक्ष्य की वह यह कि अरब देशों के शासन में वैसे चाहे जो भी भिन्नता हो—पर जहाँ तक इजराइल का संबंध है, उसके विरुद्ध वे सब दृढ़ता से संगठित और एक हैं। उन्हें रूस और अमरीका से, इंग्लैंड और फ्रांस से इतना खतरा नहीं है जितना इजराइल से। संपूर्ण अरबजाति इजराइल की स्थिति को राष्ट्रीय अपमान के रूप में अनुभव करती है और एक क्षण का भी यह विश्वास करने को तैयार नहीं है, कि इजराइल अपनी हद तक सीमित रहेगा।

चौथी समस्या अरबों के सामने मुझे जो दिखाई दी वह यह कि एक ओर तो उसे घर के दुश्मनों से लोहा लेना पड़ता है और दूसरी ओर उसे ब्रिटेन-फ्रांस के साम्राज्यवादी हथकंडों से सावधानी बरतनी पड़ती है तीसरे उसके द्वार पर रूस और अमरीका दोनों बड़े-बड़े दाम एक हाथ में थैली और दूसरे में हथियार लिए हुए सहायता के लिए खड़े हुए हैं—इनमें से वह किस को स्वीकार करे और किस को अस्वीकार?

कहने का तात्पर्य यह कि जैसे भारत इस समय पर के सदियों सीमा के भीतरी राष्ट्रों की गुटबंदियों के साथ-साथ अपने नवनिर्माण के लिए व्याकुल है वही हाल इस समय अरबों सामकर अरब गण-राज्य का है। कठिनाइयाँ बहुत हैं उलझनें भी कम नहीं सदियों की गुलामी का सिलसिला भी साथ है, भौतिक उन्नति के इस युग में साधन भी न के बराबर हैं, लेकिन दोनों में विश्वास की लगन का परिश्रम की मैत्री की, सूझ-बूझ की कमी नहीं है। इससे आशा बनती है कि यह अवश्य ही अपने कार्य में सफल होंगे। अपने सपने पूरे कर सकेंगे।

भगवान करे ऐसा ही हो!